कृषि मूलम् जगत् सर्वम्

कृषि चौपाल

कृषि एवं ग्रामीण विकास को समर्पित हिन्दी मासिक पत्रिका

आरएनआई पंजी. संख्या
डीईएलएचआईएन/2007/20953

वर्ष-8, अंक-9
दिसंबर 2015

₹15

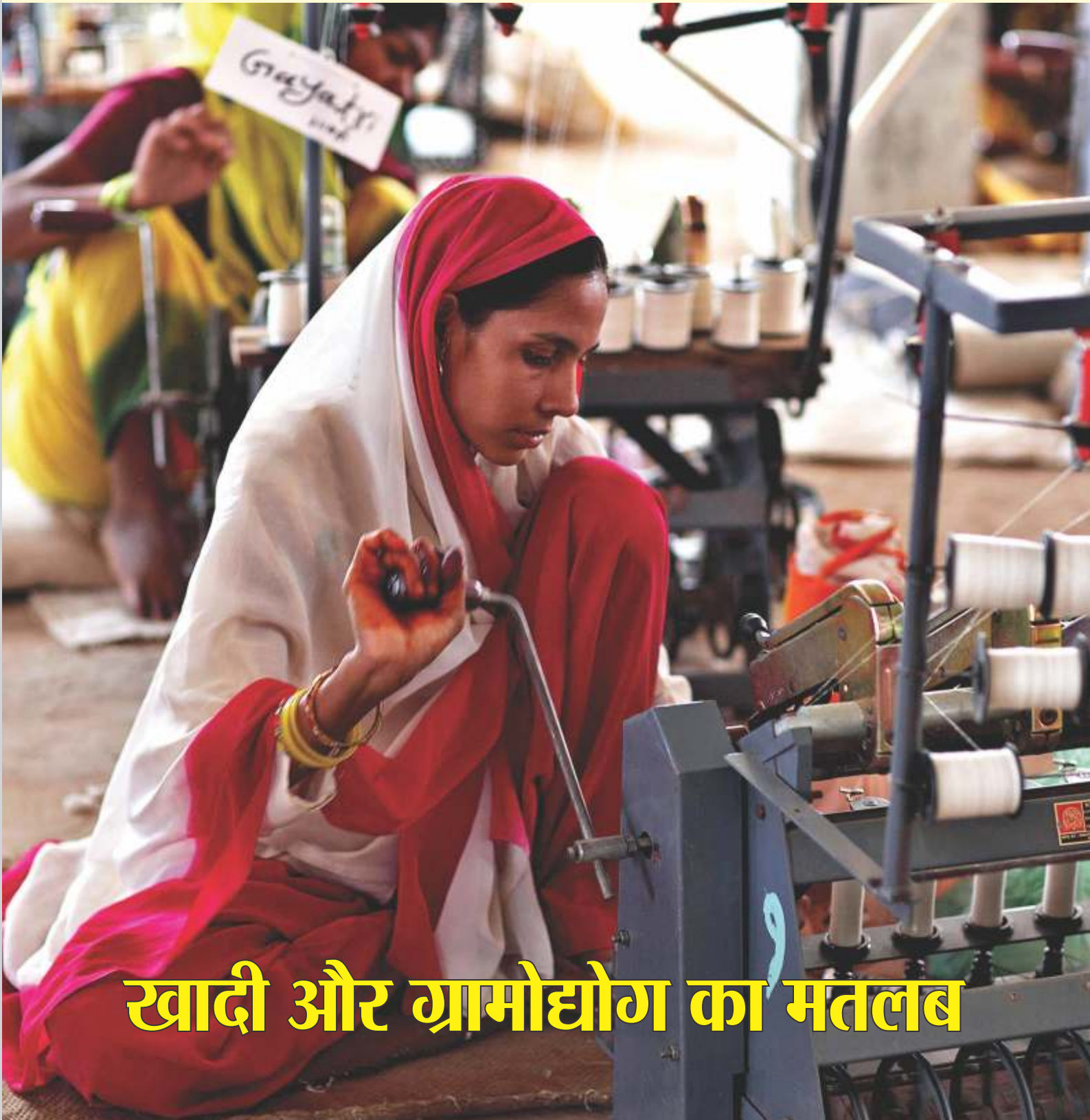

खादी और ग्रामोद्योग का मतलब

कृषि मूलम् जगत् सर्वम्

कृषि चौपाल

कृषि एवं ग्रामीण विकास को समर्पित हिन्दी मासिक पत्रिका

कृषि क्षेत्र भीषण संकट के दौर से गुजर रहा है। विसंगति यह है कि वर्तमान में यह आगे बढ़ने के बजाय दिनोंदिन पीछे जा रहा है। अब तो ग्रामीण लोगों का भी खेती-किसानी से मोह भंग-सा हो गया है। भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही खेती-किसानी आज अत्यंत उपेक्षित हो चली है। खासकर भारत जब ब्रिटिश उपनिवेश बना तभी से भारतीय कृषि तथा इससे जुड़े उद्योग-धंधे धीरे-धीरे उपेक्षित होते चले गये। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह उपेक्षा और तिरस्कार जारी रहा। भले ही भारत में हरित क्रांति का दौर रहा हो, इसके बावजूद भारत के उन लोगों की दशा अत्यंत दीन-हीन हो चुकी है जो कि रोजगार के लिए कृषिक्षेत्र पर निर्भर हैं। यही वजह है कि लोग आये दिन खेती-किसानी त्याग रहे हैं। हालात ऐसे ही रहे तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली खतरे में पड़ सकती है।

कृषिक्षेत्र के प्रति सरकारों की उदासीनता और किसानों के मोहभंग के कारणों की पड़ताल तथा कृषिक्षेत्र के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने का बीड़ा भी 'कृषि चौपाल' ने उठाया है। हमारी कोशिश है कि 'कृषि चौपाल' को सरकारों और किसानों तथा आम जनता के मध्य संवाद सूत्र के रूप में विकसित किया जा सके। हमारी इस कोशिश में हम आपसे भी सक्रिय और सकारात्मक सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

पत्रिका में विज्ञापन प्रकाशन की दर

कवर: भीतरी प्रथम पृष्ठ (कलर)	रु. 35,000
कवर: भीतरी दूसरा पृष्ठ (कलर)	रु. 35,000
कवर: अंतिम पृष्ठ (कलर)	रु. 50,000
संपूर्ण भीतरी पृष्ठ (कलर)	रु. 25,000
भीतरी आधा पृष्ठ (कलर)	रु. 15,000
संपूर्ण भीतरी पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	रु. 15,000
संपूर्ण मध्य पृष्ठ (कलर)	रु. 50,000
संपूर्ण मध्य पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	रु. 25,000

सदस्यता विवरण

वार्षिक सदस्यता - 180 रुपये

द्विवार्षिक सदस्यता - 350 रुपये

पंचवार्षिक सदस्यता - 750 रुपये

पत्रिका भारतीय डाक की बुक पोस्ट सुविधा के जरिये भेजी जाएगी।

संपादकीय कार्यालय

कृषि चौपाल

सी-355, तृतीय तल
गली नं. 9, वेस्ट विनोद नगर
दिल्ली-110092

संपर्क
+91 9910406059

ईमेल
krishichaupal@gmail.com

कृषि चौपाल

कृषि एवं ग्रामीण विकास को समर्पित हिन्दी मासिक पत्रिका

वर्ष-8 ❖ अंक-9 ❖ दिसंबर 2015

संपादक
महेन्द्र सिंह बोरा

सलाहकार संपादक
शैली विश्वजीत

सहायक संपादक
मदन जलाल

विशेष संवाददाता
गणेश चन्द्र पांडे

डिजाइन
कल्पना प्रिंटोग्राफिक्स

वितरण एवं प्रसार
दलीप जीना

संपादकीय कार्यालय
कृषि चौपाल
सी-355, तृतीय तल, गली नं. 9
वेस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110092

संपर्क: +91 9910406059,
9716407931, 9211915538
ईमेल: krishichaupal@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक महेन्द्र सिंह बोरा द्वारा सी-355, तृतीय तल, गली नं. 9, वेस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110092 से प्रकाशित और मयंक ऑफसेट प्रोसेस, 794/95 गुरु रामदास नगर एक्सटेंशन, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092 से मुद्रित।

'कृषि चौपाल' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किये गये विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्तियां हैं। संपादकीय मंडल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'कृषि चौपाल' में दिये गये विभिन्न उपचारों, सुझावों पर अमल करने पर यदि किसी को किसी प्रकार की क्षति होती है तो इसके लिए 'कृषि चौपाल' को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। सुझाये गये विभिन्न उपचारों और परामर्शों पर अमल करने से पूर्व संबंधित विशेषज्ञों की राय को प्राथमिकता दें।

किसी भी तरह के विवाद का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाले सक्षम न्यायालयों और फोरमों में ही किया जाएगा।

पत्रिका में प्रकाशित कुछ चित्र इंटरनेट से लिए गये हैं। हम उन सभी छायाकारों का आभार व्यक्त करते हैं।

आवरण चित्र साभार: downtoearth.org

● उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं।

खाली खलिहानों और रुष्ट किसानों से नहीं आएगी खुशहाली

किसानों ने रबी की फसल की जैसे-तैसे बुआई कर ही ली है और अब सहमे-सहमे आसमान को आये दिन ताकते रहते हैं। रबी के पिछले सीजन में मौसम की मार से किसान अभी तक उबरे नहीं हैं। सरकारों द्वारा जारी मुआवजे के कालबाधित धनादेशों को लेकर हाकिमों के दर पर ऐड़ियां घिस रहे हैं। उत्तर भारत वर्तमान में सूखे और कोहरे के साथ-साथ धुंध से जूझ रहा है। प्रस्तुत अंक के प्रेस में जाते-जाते खबर आई है कि दक्षिण भारत भयंकर बाढ़ की चपेट में आ गया है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना में जन-धन की दु:खद और भारी क्षति हुई है। यह तो सर्वविदित है ही कि प्राकृतिक प्रचण्डताओं के प्रकोप का सबसे ज्यादा बुरा असर किसानों पर पड़ता हैं।

भारत में खेती-किसानी का 75 प्रतिशत दारोमदार आज भी मौसम की मेहरबानी पर टिका हुआ है। हाल ही में खरीफ के सीजन में दक्षिण भारत के अधिकांश क्षेत्रों में विकराल सूखा पड़ा और मध्य भारत तथा उत्तर भारत में भी सूखे ने हाहाकार मचाया। धान सहित खरीफ की अन्य लहलहाती फसलें अचानक पड़े सूखे की भेंट चढ़ गयीं। और अब उत्तर भारत तथा मध्य भारत जहां रबी के सीजन में भी वर्षा की न्यूनता के कारण सूखे की ओर बढ़ रहा है, वहीं दक्षिणी राज्यों में अतिवृष्टि ने कहर बरपा दिया है। खासकर तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना में हालात काबू से बाहर हो चले हैं। प्रधानमंत्री श्री मोदी भी प्राकृतिक प्रचंडताओं के प्रकोप का जायजा लेने तमिलनाडु पहुंच गये हैं और वहां पर मुख्यमंत्री जयललिता से मिलकर उन्होंने केंद्र सरकार की ओर से फौरी राहत देने का भी आश्वासन दिया है।

भारतीय कृषि क्षेत्र को घाटे और दुर्दशा से उबारने के प्रयासों में मौसम की मेहरबानी को बिसराया नहीं जा सकता है। आजादी के लगभग 70 सालों बाद भी देश की अधिकांश खेतीबाड़ी मानसून आधारित है। सिंचाई सुविधाओं और वैज्ञानिक तौर-तरीकों से खेती करने का तंत्र विकसित नहीं किया जा सका है। अब सवाल पैदा होता है कि तकनीकी सुविधाओं और ज्ञान के अभाव में खेती-किसानी को और अधिक उत्पादक कैसे बनाया जा सकता है? और जब तक खेती-किसानी को उत्पादक नहीं बनाया जायेगा तब तक कृषि क्षेत्र को घाटे से उबारा नहीं जा सकता है।

कृषि क्षेत्र को और अधिक उत्पादक तथा देश की अर्थव्यवस्था में सराहनीय सहयोगी बनाने के लिये यह जरूरी है कि कृषि कार्यों से संबंधित सुविधाओं मसलन सिंचाई, विद्युत आपूर्ति, उन्नत बीज, कम जोखिम वाले पर्यावरण मित्र रासायनिक उर्वरकं और कीटनाशक तथा कृषि तकनीक का अधिकाधिक विस्तार किया जाये। कृषि को अधिकाधिक तकनीक से लैस किया जाये ताकि प्रतिकूल मौसम संबंधी जोखिमों का समय रहते सामना किया जा सके। किसान की फसल जब नष्ट हो जाती है तो सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा उसके बाद मुआवजा दिया जाता है। परंतु यह स्मरण रहे कि मुआवजा देने से किसान की फसल की भरपाई नहीं हो पाती और ना ही उसकी क्षति की क्षतिपूर्ति हो पाती है, क्योंकि उसका अमूल्य श्रम तो सम्मानित होने से वंचित हो ही जाता है। मुआवजा केवल बीज की भरपाई भी कर दे तो यही काफी है। इसलिये आज यह नितांत आवश्यक हो गया है कि कृषि क्षेत्र को पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीक के समन्वय से संवारा जाये तथा इसकी पुन: प्रतिष्ठा की जाये। यदि हमारा किसान खुश नहीं होगा तो फिर खलिहान भी खाली होगा। सत्ता के शीर्ष प्रतिष्ठान को यह याद रखना होगा कि खाली खलिहानों और रुष्ट किसानों से देश की खुशहाली का सपना देखना एक खुशफहमी के सिवा और कुछ साबित नहीं होगा।

महेन्द्र सिंह बोरा
संपादक

इस अंक में...

कृषि समाचार	02
खादी और ग्रामोद्योग का मतलब	04
ग्रामीण रोजगार के लिए खादी ग्रामोद्योग की परियोजनाएं	07
'डिजिटल इंडिया' से पहले चाहिए 'स्वावलंबी भारत'	08
गांवों को पहले गांवों की तरह तो बनाइए हुजूर	09
जैविक खेती से ही संवरेगा भविष्य	11
भारत में पेटेंट मिलने में देरी से मर जाते हैं कई शोध	12
बैंकों का मायाजाल	13
ताकि सलामत रहे दलहन-तिलहन	15
जौ की खेती	17
पलायनः सूने होते गांव-बंजर होती खेती	18
हिमाचल की तर्ज पर करना होगा बागवानी का विकास	19
गांवों के विकास के लिए चाहिए दीर्घावधि योजनाएं	21
सेब उत्पादन का राष्ट्रीय परिदृश्य और उत्तराखंड	22
ग्लेडियोलस के उत्पादन वृद्धि हेतु सुझाव	28
सस्ता विकल्प है हरी खाद	30
ठाकुर का कुआँ	31

समाचार

अब गरीबों को इलाज के लिये मिलेगी पांच लाख रुपये तक की मदद

गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को इलाज के लिये पांच लाख रुपये तक की चिकित्सा सहायता का केंद्र सरकार द्वारा पुख्ता इंतजाम किया गया है। गंभीर बीमारियों के इलाज के लिये उन मरीजों को हालांकि 'स्वास्थ्य मंत्री विवेकाधीन अनुदान' के तहत भी मदद दी जाती है, जिनकी सालाना परिवारिक आय एक लाख रुपये से कम आंकी गयी हो।

गरीब मरीजों को अब खतरनाक जानलेवा बीमारियों का सरकारी अस्पतालों में इलाज कराने के लिये केंद्र सरकार द्वारा पांच लाख रुपये तक की मदद मुहैय्या कराने का प्रावधान किया गया है। पिछले दिनों केंद्र सरकार ने एक महत्वपूर्ण फैसला लेते हुए राष्ट्रीय आरोग्य निधि के अंतर्गत देश के प्रमुख सरकारी अस्पतालों को यह मदद अपने स्तर पर ही स्वीकृत करने की शक्ति प्रदान कर दी है।

अब भविष्य में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे लोगों को कैंसर, हृदय रोगों, किडनी तथा लिवर जैसे अंगों से जुड़ी गंभीर तथा घातक बीमारियों की चिकित्सा एवं उपचार हेतु यह मदद मिल पायेगी। इस महत्वपूर्ण फैसले को अमली जामा पहनाते हुए केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने राष्ट्रीय आरोग्य निधि के अंतर्गत केंद्र सरकार के 12 अस्पतालों एवं चिकित्सा संस्थानों को इस हेतु 50-50 लाख रुपये का आरोग्य निधि कोष मुहैय्या करा दिया है। साथ ही इन चिकित्सा संस्थानों को पांच लाख रुपये तक की मदद इस कोष से पात्र रोगी को उपलब्ध कराने की छूट भी प्रदान कर दी गयी है। गौरतलब है कि पहले यह सीमा केवल तीन लाख रुपये ही थी।

मदद के इस नये प्रावधान के अंतर्गत अब पांच लाख रुपये से ज्यादा के खर्च वाले मामले ही मदद की मंजूरी हेतु केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय को स्वीकृति के लिये भेजे जायेंगे। गरीबों को इलाज की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराने के नजरिये से केंद्र सरकार द्वारा गरीब कैंसर रोगियों के उपचार के लिये 'स्वास्थ्य मंत्री कैंसर रोगी कोष' की व्यवस्था करते हुए देश के 27 क्षेत्रीय कैंसर संस्थानों को मदद मुहैय्या कराने की शक्ति प्रदान कर दी है। गौरतलब है कि आरोग्य निधि योजना की शुरुआत साल 1997 में हुई थी, परंतु इस दौरान इस योजना के अंतर्गत उपलब्ध सहायताओं का पर्याप्त प्रचार-प्रसार नहीं किया जा सका। इस महत्वपूर्ण योजना के संबंध में जन जागरुकता के अभाव में विगत लगभग दो दशक के दौरान अभी तक लगभग केवल 37 हजार लोगों को ही मदद मिल पायी है।

शुगर की एक और आयुर्वेदिक दवा बहुत जल्द होगी बाजार में

लखनऊ स्थित 'राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान संस्थान' के वैज्ञानिकों ने मधुमेह (शुगर) की नयी तथा असरकारक औषधि तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। संस्थान के प्रमुख वैज्ञानिक एकेएस रावत का दावा है कि अधिक ब्लड शुगर वाले रोगियों के लिये यह नयी दवा ज्यादा कारगर है। श्री रावत ने यह भी दावा किया कि यदि लंबे समय तक इस दवा का नियमित उपयोग किया जाये तो रोगी की इंसुलिन पर निर्भरता को बहुत हद तक घटाया जा सकता है।

ईजाद की गयी नयी दवा विशुद्ध प्राकृतिक औषधिय वनस्पतियों से तैयार की गयी है तथा परीक्षण के दौरान इसके कोई भी दुष्प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। जानवरों पर किये गये परीक्षण के दौरान यह देखा गया कि यह पूरी तरह सुरक्षित तथा कारगर है। चिकित्सकीय परीक्षणों के दौरान इस दवा को 67 फीसदी सफल पाया गया है।

श्री रावत ने दवा की खूबियों के बारे में बताते हुए स्पष्ट किया कि प्रायः एंटीजन विभिन्न शारीरिक अंगों पर दुष्प्रभाव डालते हैं, परंतु खोजी गयी दवा में पर्याप्त मात्रा में एंटी ऑक्सीडेंट मौजूद होने के कारण यह मधुमेह में खासी प्रभावी

है। दवा को रोगी को खाने वाली गोलियों के रूप में दिया जायेगा। इसका नाम बीजीआर-34 रखा गया है और इसकी 100 गोलियों की कीमत 500 रुपये रखी जा सकती है। दवा के निर्माण और विपणन तथा विक्रय की अनुमति एनबीआरआई ने राजधानी दिल्ली स्थित दवा कंपनी को प्रदान कर दी है।

जीएम फसलों को मंजूरी का मन बना रही सरकार

मौजूदा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार आनुवांशिक रूप से परिवर्वित विभिन्न फसलों को उगाने की स्वीकृति देने की अंदर ही अंदर गुपचुप योजना बना रही है, जिसके तहत इस वर्ष दीपावली के बाद सरसों की जीएम फसल की खेती को मंजूरी मिलने की संभावना व्यक्त की जा रही है।

गौरतलब है कि मौजूदा सरकार के नेतृत्वकारी घटक दल भाजपा का मातृ संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जीएम फसलों की खेती के सख्त खिलाफ रहा है, इसके बावजूद सरकार की संबंधित जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (जीइएसी) की आगामी बैठक के कार्यक्रम में विचारण हेतु, इस मुद्दे को शामिल किया गया है। वर्तमान में इसके खिलाफ देशव्यापी स्तर पर किसान लामबंद हो रहे हैं।

जीएम सरसों की खेती का परीक्षण दिल्ली विश्व विद्यालय के अंतर्गत विशेषज्ञों की देखरेख में किया जा रहा था। परीक्षण पूर्ण होने के बाद परीक्षण से जुड़े विशेषज्ञों ने केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय को इसकी सूचना दे दी थी। इसके बाद सरकार द्वारा भेजा गया प्रस्ताव जीइएसी के पास लंबित है, परंतु अब इस प्रस्ताव पर कभी भी स्वीकृति की मुहर लग सकती है, सूत्रों का कहना है कि अभी तक यह प्रस्ताव बिहार चुनावों के मद्देनजर लगभग स्वीकृति की शक्ल में ही समिति के पास रूका पड़ा था।

जीएम मुक्त फसल अभियान की संयोजक सुश्री कविता कुरुगति ने स्पष्ट किया कि संगठन ने केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर को पत्र लिखकर इस संबंध में अपना ऐतराज दर्ज किया है। भारतीय किसान संघ, भारतीय किसान यूनियन, डॉक्टर्स फॉर फूड सेफ्टी एंड बायोसेफ्टी आदि संगठन भी जीएम फसलों की खेती के विरोध में सरकार की नीति की मुखालफत करते आ रहे हैं। इन संगठनों ने मिलजुलकर एक ऑनलाइन याचिका भी दायर की है। यदि सरकार जीएम फसलों को मंजूरी देती है तो इस मसले को लेकर भूमि अधिग्रहण विधेयक-2014 की तर्ज पर किसान आंदालेनों से जुड़े संगठनों द्वारा भारी विरोध दर्ज किया जायेगा, यह निश्चित है।

ग्रीनपीस ने लगाया सरकार पर भेदभाव का आरोप

गैर सरकारी स्वैच्छिक सेवा संगठन (दहव) 'ग्रीनपीस' ने केंद्रीय गृह मंत्रालय पर आरोप लगाते हुए कहा है कि सुनिश्चित अभियान के अंतर्गत गैर सरकारी संगठनों के भारत में कार्य करने के पंजीकरणों को रद्द किया जा रहा है। गौरतलब है कि तमिलनाडु के रजिस्ट्रार ऑफ सोसायटीज द्वारा ग्रीनपीस का बतौर सोसायटी, पंजीकरण रद्द कर दिया गया है।

ग्रीनपीस ने मौजूदा एनडीए सरकार पर गंभीर आरोप लगाते हुए कहा कि पंजीकरण रद्द करने से संबंधित उसको जारी किया गया ताजा नोटिस, वैचारिक भिन्नता के प्रति मौजूदा सरकार की भारी असहिष्णुता को विस्तारित करने की योजना का ही अंग प्रतीत होता है। पंजीकरण रद्द करने की कार्रवाई से आहत संगठन ने यह भी कहा कि यह कृत्य वैचारिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने का अशोभनीय प्रयास है। सरकार का यह प्रयास उसके लिये भविष्य में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शर्मिंदगी का कारण बनेगा।

संगठन ने हालांकि मौजूदा समस्या को लेकर पुनः विधिक विचारण प्राप्त करने को अधिक प्राथमिकता दी है।

गौकशी और गोमांस बिक्री पर दायर याचिका खारिज

दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली में गौकशी रोकने और गाय के मांस के विभिन्न उत्पादों की बिक्री पर रोक लगाने से इनकार कर दिया। न्यायालय ने इससे संबंधित प्रावधान लागू करने की याचिका को खारिज करते हुए स्पष्ट किया कि यह एक विचार की त्रुटिपूर्ण व्याख्या है। इस याचिका पर सुनवाई के दौरान दिल्ली सरकार ने न्यायालय को यह भी स्पष्ट किया कि पशुधन की संरक्षा हेतु पूर्व से ही दिल्ली कृषि पशुधन संरक्षण कानून दिल्ली में लागू है।

दिल्ली सरकार के पक्ष को सुनते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जी रोहिणी तथा न्यायाधीश जयंत नाथ की पीठ ने याचिका पर आगे सुनवाई करने से इनकार कर दिया। न्यायालय के समक्ष सरकार की ओर से पेश अतिरिक्त स्थायी वकील संजय घोष ने माना कि याचिका प्रचार पाने के उद्देश्य से दायर की गयी प्रतीत होती है। सरकार की ओर से यह भी स्पष्ट किया गया कि दिल्ली सरकार के पास वर्तमान में पांच पशु आश्रयगृह हैं जिनकी क्षमता 25 हजार मवेशियों की है। यदि याचिकाकर्त्ता के पास भी कोई अतिरिक्त मवेशी है तो वह उसे विधिवत् उक्त आश्रयगृहों को सौंप सकता है।

कीटनाशकों से खाद्यान्न हो रहे हैं दुष्प्रभावित

विभिन्न खाद्य पदार्थों में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही एंटीबायोटिकों की मात्रा को लेकर सेंटर फॉर साइंस एंड एन्वायरनमेंट (सीएसई) ने ऐतराज दर्ज किया है। सीएसई ने इस बारे में सरकार से नीति बनाने की मांग की है। केंद्र के शोधकर्त्ताओं और विशेषज्ञों का कहना है कि मानवों और पशुओं में एंटीबायोटिकों का प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है, जिससे लोगों की प्रतिरोधक क्षमता घटती जा रही है।

दिल्ली में हाल ही में एंटीबायोटिकों के दुष्प्रभावों पर आयोजित की गयी एक परिचर्चा के दौरान सर गंगाराम अस्पताल के वरिष्ठ सलाहकार डॉ चांद भटलक ने कहा कि एंटीबायोटिकों का प्रयोग कम करके प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। एंटीबायोटिकों की अधिकता के कारण शरीर में अनेक प्रकार के स्वास्थ्य विकार उत्पन्न हो रहे हैं। परिचर्चा में शामिल विशेषज्ञों का कहना था कि किसानों द्वारा कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग करने से अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। हमारे देश के किसान एंटीबायोटिकों व कीटनाशकों के प्रयोग के मामले में शिक्षित और जागरूक नहीं हैं।

विशेषज्ञों का यह भी कहना था कि एंटीबायोटिकों के प्रयोग के कारण नवजात शिशुओं में अनेक दुष्प्रभाव देखे गये हैं। बच्चों को बोलने सुनने में दिक्कतें आने के मामले भी सामने आये हैं सीएसई के उपनिदेशक चंद्रभूषण ने कहा कि एंटीबायोटिकों से केवल मानवों पर ही बुरा असर नहीं पड़ रहा है बल्कि पशुओं में भी अनेक विकार उत्पन्न हो रहे है। उन्होंने इनके प्रयोग के मामले में सरकार से दिशानिर्देश तैयार करने की मांग की है। ●

खादी और ग्रामोद्योग का मतलब

- **खादी और ग्रामोद्योग कभी रीढ़ हुआ करते थे भारतीय अर्थव्यवस्था के**
- **सरकार की उपेक्षा से आज बुरी हालत में**
- **घर में ही कच्चा माल, उत्पादन क्षमता और विशाल बाजार**
- **बन सकते हैं बेरोजगारी से लड़ने में कारगर हथियार**
- **राष्ट्र की गरिमा बन सकते हैं सौ प्रतिशत स्वदेशी उत्पाद**

■ **महेन्द्र सिंह बोरा**

भारत के स्वतंत्रता संग्राम से खादी का बहुत मजबूत रिश्ता रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान खादी ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। अगर यह कहा जाये कि खादी अभियान और स्वतंत्रता आंदोलन एक दूसरे के पूरक बन गये थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश ने जिस विकास के मॉडल को स्वीकार किया उसमें खादी अभिजात्य वर्ग तक सिमटकर रह गयी। कोई भी निम्न और मध्यम तबके का व्यक्ति आज खादी पहनने से पहले अपनी जेब के बारे में सोचता है। आखिर ऐसा क्या हुआ कि जिस खादी और चरखे को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आजादी के आंदोलन का प्रतीक बना दिया वह खादी हाशिये पर चली गयी और आम जनजीवन से दूर हो गयी? खादी और चरखे की लोकप्रियता का आजादी के आंदोलन के दौरान क्या आलम रहा होगा इसका अंदाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि भारत के सीमांत जनपद अल्मोड़ा स्थित कौसानी में स्थापित अनासक्ति आश्रम में भी उस दौरान चरखे पर सूत काता जाता था और खादी तैयार की जाती थी। गुजराज के साबरमती आश्रम से लेकर कौसानी के अनासक्ति आश्रम तक चरखे और खादी ने जो प्रसार पाया तथा भारत को एकता के सूत्र में पिरोने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया उसे वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र भाई दामोदर दास मोदी ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया है।

चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से भेंट के दौरान श्री मोदी ने खादी की सदरी तोहफे में दी और अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा को पवित्र पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता की प्रतियां खादी की जिल्दसाजी करवाकरर उपहार में दी तो यह आभास हो गया था कि वे खादी के बारे में गंभीरता से सोच रहे हैं। वर्तमान में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार ने खादी की साख बढ़ाने के लिए खादी का ट्रेड मार्क (व्यापार चिन्ह) तैयार करने तथा खादी के उपयोग को बढ़ावा देने की अनेक योजनाएं तैयार की हैं, जिनमें से अभी कुछ योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। प्रधानमंत्री ने खादी को बढ़ावा देने की पहल करते हुए आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले अपने कार्यक्रम 'मन की बात' में आम लोगों से खादी पहनने की अपील की है।

भारत के महानगरों में गांधी जयंती 2 अक्टूबर से लेकर गांधी जी की पुण्यतिथि 30 जनवरी के मध्य ही खादी की बिक्री पर ध्यान देने का एक चलन सा बन गया था। इसी अवधि के दौरान खादी की बिक्री में उछाल भी आता था। इस दौरान खादी पर छूट दी जाती है ताकि उसकी बिक्री में उछाल आ सके। वर्ष के बाकी महीनों में हम खादी को और उसके योगदान को विस्मृत कर देते हैं। हमें यह भी स्मरण नहीं रहता है कि भारत के संपन्न पारंपरिक कपड़ा उद्योग को बर्बाद करने वाली ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ एक आंदोलन बनकर उभरी खादी हमारे देश के ग्रामीण इलाकों में काफी बड़े पैमाने पर रोजगार भी मुहैय्या कराती है। वास्तव में हुआ यह कि जैसे-जैसे हम खादी को भूलने लगे वैसे-वैसे हम ग्रामीण उद्योगों और उद्यमों को भी बिसराते चले गये। ये वे उद्योग थे जिनकी पहुंच हमारे सामान्य जन-जीवन में हमारे आंगन से लेकर हमारी रसोई और शयनकक्ष तक थी। इन उद्योगों से निर्मित साजो-सामान के बिना हम अपनी गृहस्थी की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। जयपुरी रजाई, कश्मीरी शॉल, हिमाचली टोपी, गांधी टोपी, राजस्थानी बंधेज, कोल्हापुरी चप्पलें, रामपुरी चाकू, अलीगढ़ के ताले, बरेली का सूरमा, बेंत का फर्नीचर, लखनऊ की चिकन, मऊ की तांत साड़ी, भागलपुर की रेशमी साड़ी, रसोई के लौह उपरकण, पानी की गगरियां, पीतल के परात, मोजरी के जूते और

न जाने कितने साजो-सामान रोजमर्रा की जिंदगी में हम जाने-अनजाने उपयोग करते थे, जोकि ग्रामीण उद्योगों से आता था। गांव के गांव इनसे रोजगारशुदा और आत्मनिर्भर थे। किसानों के लिये ये उद्योग सिर्फ आय का स्रोत ही नहीं थे बल्कि आड़े वक्त में संकटमोचक की भूमिका भी निभाते थे।

अब सवाल पैदा होता है कि क्या वास्तव में खादी तथा ग्रामोद्योग रोजगार प्रदाता के रूप में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं? और यदि यह सब है तो खादी अभी तक सिर्फ उच्च मध्यवर्ग तथा अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित क्यों है? आइये, अब हम इन सवालों की पड़ताल वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करते हैं।

राज्यसभा में एक सवाल का जवाब देते हुए केंद्रीय सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्यम राज्य मंत्री गिरिराज सिंह ने हाल ही में यह बताया था कि 31 मार्च 2015 तक खादी उद्योग में लगभग सवा दस लाख लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है। इनमें से तकरीबन 8 लाख 78 हजार 857 लोग कताई का काम करते हैं जबकि एक लाख 46 हजार 551 लोग बुनकर का कार्य कर रहे हैं। खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (केवीआइसी) के हालिया जारी प्रतिवेदन के अनुसार 2013-14 के दौरान इस क्षेत्र में 140.29 लाख रोजगार के मौके पैदा हुए जो वित्त वर्ष 2012-13 से 13 फीसदी ज्यादा हैं। आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक 2013-14 के दौरान खादी उद्योग में 10.89 लाख (जबकि कुल ग्रामीण उद्योगों में 129.40 लाख) रोजगार के अवसर सृजित हुए। इस लिहाज से देखा जाये तो खादी ग्रामोद्योग रोजगार प्रदान करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है।

लेकिन उपरोक्त आंकड़ों का विश्लेषण बारीकी से करने पर तथा आंकड़ों की तुलना इस क्षेत्र की वास्तविकता से करने पर यह हकीकत सामने आयी है कि खादी तैयार करने वाले नियमित कारीगरों की संख्या काफी कम होती है। इन आंकड़ों में नियमित कारीगरों के तौर पर उन कारीगरों को भी शामिल कर लिया जाता है जोकि महीने में सिर्फ 10-12 दिन ही काम करते हैं। आंकड़ों की बाजीगरी के कारण ऐसा ही वाकया सन् 2013 में भी पेश आया था। उस दौरान संसद में पेश एक रिपोर्ट के हवाले से यह बताया गया कि खादी से 10 लाख 71 हजार लोगों को रोजी-रोटी मिली हुई है। उसी दौरान तत्कालीन संप्रग सरकार ने खादी कारीगरों के लिये सामूहिक बीमा योजना शुरू की थी, परंतु इस योजना में केवल दो लाख 81 हजार कारीगरों ने ही अपना पंजीकरण कराया। जाहिर है कि खादी क्षेत्र में कार्यरत नियमित कारीगरों

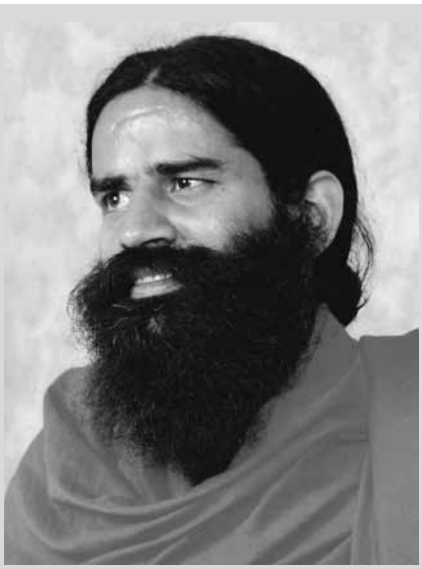

एक सन्यासी जब इस देश में कॉरपोरेट बाबा का स्तर प्राप्त कर सकता है और वह भी केवल देशी उत्पादों के सहारे तो फिर दुनिया की सबसे बड़ी सरकार यह सब क्यों नहीं कर पा रही है?

की वास्तविक संख्या इसी आंकड़े के इर्द-गिर्द होनी चाहिये। दरअसल सारा खेल आंकड़ों की बाजीगरी का है। मसलन यदि खादी आयोग द्वारा जारी होने वाले आंकड़ों को ही लिया जाये तो उन आंकड़ों में ऐसे चलते-फिरते कताई करने वाले और बुनकर भी बतौर नियमित कारीगर शामिल कर लिये जाते हैं जिन्होंने कि इस क्षेत्र में एक पखवाड़े से लेकर मात्र 6 माह की अवधि तक कार्य किया होता है। परंतु जब मामला संगठित और स्थायी रोजगार से संबंधित आंकड़ों के संचयन का आया तो ऐसे लोगों को आंकड़ों से हटाना पड़ा और वास्तविकता सामने आ गयी। दरअसल आंकड़ों के संग्राहक इस तथ्य की अनदेखी कर जाते हैं कि किसी क्षेत्र विशेष में नियोजित व्यक्ति पूर्णतः रोजगार के लिये क्षेत्र विशेष पर निर्भर है या आंशिक रूप से निर्भर है।

त्रुटिपूर्ण आंकड़ों के संचयन से सरकार को भी योजनाओं का निर्माण करने में परेशानी आती है और योजना के परिणामों पर भी इसका असर पड़ता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि खादी तथा ग्रामोद्योग रोजगार की बेहतर संभावनाओं वाले क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना हेतु बहुत ज्यादा पूंजी निवेश की दरकार भी नहीं होती। खादी के धागे की कताई के लिये तो सिर्फ सूत और चरखे के अलावा एक अदद मानव श्रमिक की ही प्रति इकाई आवश्यकता होती है। पावरलूम या कपड़ा बनाने की एक छोटी-मोटी इकाई स्थापित करने के लिये जहां लगभग 10 लाख रुपये की जरुरत पड़ती है वहीं दूसरी ओर खादी बनाने की एक इकाई बनाने में केवल 20 हजार रुपये की लागत आती है।

ग्रामोद्योगों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इनके लिये कच्चा माल गांव में ही सस्ती दरों पर उपलब्ध हो जाता है। अकाल, सूखा अतिवृष्टि, बाढ़ आदि दैवीय आपदाओं के दौरान फसलों की अच्छी पैदावार नहीं होने की स्थिति में ये ग्रामोद्योग आजीविका का सर्वश्रेष्ठ साधन साबित होते रहे हैं। परंतु स्वतंत्रता के बाद और खासकर आपातकाल (1976-77) के बाद इन उद्योगों के साथ अनेक प्रकार की समस्याएं पेश आयीं और किसानों ने तथा अन्य पेशेवर उद्यमियों ने इन उद्योग-धंधों को त्यागना प्रारंभ कर दिया। इन उद्योगों में आयी गिरावट के प्रमुख कारणों की पड़ताल यहां प्रस्तुत की जा रही है।

पूंजी निवेश की समस्याः- ग्रामीण क्षेत्र में उद्योग-धंधे स्थापित करने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि पूंजी का इंतजाम कैसे किया जाये। बैंकिंग संस्थाओं का हमेशा यह नजरिया रहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों को ऋण देने पर यह डूब सकता है। इसीलिये उन्हें आसानी से बैंकिंग संस्थाएं ऋण नहीं देती हैं, यदि देती भी हैं तो वह काफी महंगा होता है। यही कारण है कि खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (केवीआइसी) और अन्य सरकारी ऐजेंसियां वित्तीय सहायता ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित करने का दावा तो करती हैं, परंतु गांवों में चलने वाले कुटीर उद्योग-धंधे उनके मानकों पर खरे नहीं उतर पाते हैं। यदि येन-केन-प्रकारेण मानकों को पूरा कर भी लेते हैं तो उनसे इतने ज्यादा कागजात और पत्रावलियां मांग ली जाती हैं कि अंततः उद्यमी हार मानकर अपना मन बदल लेता है। यह सर्वविदित है कि बैंकों की पूंजी आज तक बड़े औद्योगिक घरानों ने ही डुबायी है, जिसका हिसाब-किताब कभी भी सार्वजनिक नहीं किया जाता है। यह कैसी विद्रूपता है कि जो खरबों रुपया डकार जाते हैं, उन्हें तो आसानी से ऋण उपलब्ध हो जाता है, परंतु चंद हजार रुपयों के लिये ग्रामीण उद्यमियों को पत्रावलियों का पुलिंदा तैयार करना पड़ता है और बैंकिंग संस्थाओं और कार्यदायी ऐजेंसियों के चक्कर लगाने पड़ते हैं।

आय की न्यूनताः- पर्याप्त आय हो तो कोई भी उद्यम रोजगार का मौका मुहैय्या करा सकता

है। परंतु खादी के क्षेत्र में पारिश्रमिक का मसला सदा आड़े आता रहा है। कपड़ा उद्योग में खादी पारिश्रमिक के मामले में काफी पीछे है। प्राप्त प्रतिवेदनों के अनुसार खादी के क्षेत्र में एक बुनकर की औसतन मासिक आय 3100 रुपया बैठती है जो मनरेगा से भी कहीं कम है। संभवत: यही कारण है कि विगत कुछ सालों में बुनकरों की संख्या में गिरावट दर्ज की गयी है। हमारे प्रधानमंत्री के ही गृह प्रदेश में विगत पांच वर्षों के दौरान बुनकरों की संख्या 60 हजार से घटकर 10 हजार पर आ गयी है। स्वाभाविक है कि एक दिहाड़ी श्रमिक से भी कम मजदूरी मिलने पर कोई भी व्यक्ति इस क्षेत्र में क्यों कर अपना योगदान देगा।

बाजार का अभाव:- कुटीर उद्योग प्राय: गांवों में ही संचालित होते हैं। लेकिन वर्तमान में इनका बुनियादी ढांचा काफी लुंज-पुंज हो चुका है। सड़क परिवहन और संचार के पर्याप्त साधनों के अभाव में गांवों के उत्पादों को अच्छा विपणन और बाजार नहीं मिल पाता है। जाहिर है कि ग्रामीण उद्यमियों को या तो अपना माल सस्ते में बेचना पड़ता है, या फिर वे बिचौलियों के हाथों में खेलते हैं। कई जगह ऐसा भी देखा गया है कि उद्यम तो गांवों में हो रहा है, परंतु उसका मालिक कोई शहरी बिचौलिया या उद्योगपति होता है। केंद्रीय सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्योग मंत्री कलराज मिश्र ने स्वयं स्वीकार किया है कि ग्रामीण कुटीर उद्यमियों को बाजार में अपना माल बेचने में काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

ब्रांडिंग का अभाव:- वैश्वीकरण के दौर में अनेक कंपनियां केवल अपना लेबल चिपकाकर भारी मुनाफा कमा रही हैं। बड़ी-बड़ी रिटेल कंपनियां अपने उत्पाद का बड़ा हिस्सा ग्रामोद्योग या कुटीर उद्योग क्षेत्र में तैयार करवाती हैं और बाद में उस पर अपना लेबल चस्पा कर भारी मुनाफा वसूलती हैं। जबकि हाल के वर्षों तक इन उद्यमों पर ग्रामोद्योग और कुटीर उद्यमों का एकाधिकार हुआ करता था।

प्राय: बड़े-बड़े रिटेल स्टोरों और मॉल आदि में अनेक प्रकार के पापड़, अचार, चटनी, मुरब्बा, नमकीन, बिस्किट, अगरबत्ती, मोमबती, दुग्ध प्रसंस्करित उत्पाद, सब्जियां, इत्र, चाकू, ताले, झाड़ू, टोकरी, दस्तकारी का सामान, हस्तशिल्प आदि की वस्तुएं मूल रूप से गांवों-देहातों में ही तैयार होती हैं। परंतु इन उत्पादों की पैकेजिंग और ब्रांडिंग नामी-गिरामी कंपनियों के नाम से की जाती है। यदि यही सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार उपलब्ध करा दे तो ग्रामीण उद्यमियों को बाजार से मुकाबला करने में काफी सहूलियत हो जायेगी।

कच्चे माल का संकट:- ग्रामोद्योग और खादी के क्षेत्र में गांवों में कच्चा माल तो हालांकि आसानी से मिल जाता है, परंतु अकेले कोई उद्यमी इस क्षेत्र में सहूलियत से काम नहीं कर पाता है। यदि समूह में मिलकर कुछ लोग उत्पादन करें तो कच्चा माल भी आसानी से उपलब्ध हो जाता है और उत्पादन में भी लागत कम आती है। गांवों में भण्डारण की भी समस्या होती है। वे कच्चे माल को आसानी से भण्डारित नहीं कर पाते हैं। यदि कच्चा माल समय पर उपयोग में नहीं लिया गया तो उसकी गुणवता में भी कमी आती है। दूसरी ओर बड़े उत्पादकों के पास भण्डारण की सुविधा होती है और वह इसका लाभ उठाते हैं। वे कच्चे माल की खरीद उस समय करते हैं जबकि वह सस्ती दरों पर बिक रहा होता है। इस प्रकार वह सस्ते में कच्चा माल खरीदकर उसे उत्पादन में बदलते हैं और अच्छा मुनाफा कमा लेते हैं। जबकि ग्रामीण उद्यमियों को यह सब सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती हैं। यही वजह है कि ग्रामीण उद्यमी और खादी ग्रामोद्योग इस मामले में पिछड़ते जा रहे हैं।

बहुराष्ट्रीय और बड़ी कंपनियों से मुकाबला:- खादी ग्रामोद्योग तथा अन्य कुटीर उद्योगों पर भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़ी कंपनियों ने कब्जा कर लिया है। बड़ी कंपनियां केवल गुणवत्ता नियंत्रण करती हैं। वे अपना माल कुटीर उद्यमियों से तैयार करवाती हैं और अपने तयशुदा मानकों के अनुसार इसकी खरीद करती हैं। इसी माल को कंपनियां अपने ब्रांड के नाम से बाजार में उतारती हैं। इस प्रकार ये कंपनियां ग्रामोद्योगों और कुटीर उद्यमों पर अतिक्रमण करती हैं। ये कंपनियां अपने उत्पादनों का बेहतर प्रचार-प्रसार कर पाती हैं इसलिये इनकी पहुंच व्यापक होती है, जबकि लघु और ग्रामीण उद्यमियों के पास प्रचार-प्रसार के संसाधनों का नितांत अभाव होता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि खादी और ग्रामोद्योग सहित अन्य गृहउद्यमों में रोजगार तथा आय की प्रचुर संभावनाएं मौजूद हैं। परंतु सरकारी नीतियों की कमियों के कारण तथा सरकारी नीतियों का ढंग से क्रियान्वयन न होने के कारण यह क्षेत्र आजादी के बाद पिछड़ता चला गया है। जो नीतियां ठीक-ठाक हैं उन्हें सरकार भलीभांति लागू नहीं कर पा रही है। यदि सरकार इन समस्याओं को समझकर किसान तथा ग्रामोद्योग हितैषी नीतियों का निर्माण करती हैं तो ग्रामीण उद्योगों के दिन बहुरने में समय नहीं लगेगा।

दरअसल खादी सहित तमाम ग्रामीण उद्यमों में ब्रांडिंग की कमी भी साफ नजर आती है। यही कारण है कि वह तबका जो कि एक बड़ा युवा उपभोक्ता वर्ग है इन उत्पादों की तरफ आकर्षित नहीं हो पाता है। इस क्षेत्र को आज भी असंगठित क्षेत्र का उद्यम माना जाता है। खादी की यदि ठीक-ठाक ब्रांडिंग की जाये और अन्य ग्रामीण उत्पादों का भी प्रचुर प्रचार-प्रसार किया जाये तो ये तथाकथित अभिजात्यवर्गीय ब्रांडों को अपनी गुणणत्ता तथा पर्यावरण हितैषी गुणों के चलते बाजार से विस्थापित करने की क्षमता रखते हैं।

सरकार को चाहिये कि वह खादी और ग्रामोद्योग को दो भागों में बांट दे। खादी के लिए अलग और ग्रामोद्योग के लिए अलग। क्योंकि प्राय: खादी की वजह से अन्य ग्रामीण उद्यमों की अनेदखी कर दी जाती है और सारा जोर खादी उत्पादन पर लगा दिया जाता है। आपने महसूस किया होगा कि खादी ग्रामोद्योग भण्डारों और

विक्रय केंद्रों से खादी के अलावा अन्य उत्पाद न के बराबर होते हैं। जाहिर है कि इसका जवाब नकारात्मक ही होगा। यदि खादी को पृथक कर दिया जाता है तो बाकी उद्योगों को पनपने का पर्याप्त अवसर मिल जाएगा और उनका अस्तित्व भी अलग से नजर आने लगेगा।

पारिश्रमिक में सुधार करने की महती आवश्यकता है। लेकिन पारिश्रमिक में सुधार करने से पहले हमें खादी और ग्रामोद्योग उत्पादों का बाजार विस्तृत करना होगा। प्रतिवर्ष खादी तथा ग्रामोद्योग से निर्मित माल की बिक्री में 10-12 फीसद की औसतन वृद्धि होती रही है, परंतु घरेलू कपड़ा उद्योग में खादी की हिस्सेदारी मात्र 0.5 फीसद ही है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार देशव्यापी स्तर पर खादी का उत्पादन करने वाली तकरीबन 2,250 इकाइयां केवीआइसी के तहत पंजीकृत हैं, जिनकी 2012-13 के वित्त वर्ष में कुल बिक्री करीब 800 करोड़ रुपये रही। मतलब साफ है कि खादी और ग्रामोद्योग के बाजार में रोजगार, निवेश और सुधार की काफी संभावनाएं तथा गुंजाइशें मौजूद हैं।

सरकार यदि आज तक सही दृष्टिकोण के तहत ध्यान देती तो खादी का सबसे बड़ा बाजार उसके पास ही मौजूद था। वह सेना, पुलिस तथा अर्द्धसैनिक बलों और सरकारी विद्यालयों के लिये खादी के कपड़े की वर्दियों की खरीद को आवश्यक बना सकती है। रेलवे तथा सरकारी अस्पतालों में खादी के कपड़ों के इस्तेमाल को अनिवार्य बनाया जा सकता है। सरकार के एक निर्णय से खादी के दिन फिर सकते हैं। दूसरी तरफ खादी पर जो छूट दी जाती है उसे उपभोक्ता की क्रयशक्ति के आधार पर तय किया जाना चाहिये। सिर्फ इन्हीं उपायों से खादी के बाजार में उछाल आ जायेगा। खादी को एक ब्रांड की तरह प्रमोट करने से युवावर्ग इसकी ओर आकर्षित होगा और यह आधुनिक रिटेल स्टोरों को भी टक्कर दे देगी।

ग्रामोद्योग क्षेत्र में सरकार को खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र पर खासा ध्यान केंद्रित करना चाहिये। अचार, मुरब्बे, पापड़, जूस, बड़ियां, दुग्ध और अनाज के अन्य प्रसंस्करित उत्पादों की छोटी-बड़ी इकाइयों को देशकाल-परिस्थिति के अनुसार स्थापित किया जा सकता है। खादी तथा ग्रामोद्योग से संबंधित तकनीक को भी सुधार कर इस क्षेत्र को विकसित किया जा सकता है। कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है एक ही उदाहरण काफी होगा कि एक सन्यासी जब इस देश में कॉरपोरेट बाबा का स्तर प्राप्त कर सकता है और वह भी केवल देशी उत्पादों के सहारे तो फिर दुनिया की सबसे बड़ी सरकार यह सब क्यों नहीं कर पा रही है? ●

ग्रामीण रोजगार के लिए खादी ग्रामोद्योग की परियोजनाएं

खादी ग्रामोद्योग के अंतर्गत ग्रामीण इलाकों में परियोजनाएं लगाने के लिए गांवों से संबद्ध कारोबार का निर्धारण किया गया है। इस कारोबार को सात वर्गों में बांटा गया है। इन सात समूहों में से जिस भी वर्ग में ग्रामीण लोग अपना कारोबार स्थापित करना चाहते हैं उसके बारे में जिला खादी ग्रामोद्योग के कार्यालय में जाकर पूछताछ कर सकते हैं या सीधा आवेदन कर सकते हैं। विभिन्न परियोजनाओं हेतु जिला खादी ग्रामोद्योग कार्यालय में समय-समय पर साक्षात्कार भी आयोजित किये जाते हैं, जिसकी सूचना विभिन्न माध्यमों से प्रचारित-प्रसारित की जाती है। आवेदन और साक्षात्कार में चयनित लाभार्थियों को बैंक की ओर से कर्ज की सुविधा मुहैय्या करायी जाती है। वर्तमान में इन सात समूहों के जरिये लगभग 115 परियोजनाऐं संचालित की जा रही हैं। इन परियोजनाओं के संचालन से संबंधित प्रशिक्षण भी प्रदान करने की सुविधा उपलब्ध है। संचालित हो रही प्रमुख योजनाओं का ब्यौरा निम्नलिखित है:-

वन आधारित उद्योगः- कत्था निर्माण, लाख निर्माण, कुटीर दियासलाई उद्योग, पट्टा, कागज की तश्तरी, लिफाफा उद्योग, खतपट्टी, झाड़ू, जूट उत्पाद, फोटो जड़ना, कांपी जिल्दसाजी, हाथ का कागज-गत्ता, गोंद बनाना, झोले-डिब्बे आदि का निर्माण और रेशा आदि आधारित उद्योग इस समूह के अन्तर्गत स्थापित किये जा सकते हैं।

कृषि आधारित खाद्य उद्योगः- कृषि उत्पादों पर आधारित खाद्य उद्योगों की स्थापना के लिये भी खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अनाज, दालें, मसाले, गुड़, खांडसारी, अचार, चटनी, मुरब्बा, जैम, जैली, जड़ी-बूटी संग्रहण एवं शोधन, मधुमक्खी पालन, नारियल जटा रेशा, घानी तेल उद्योग, नूडल्स बनाने, ताड़गुण, ताड़ उत्पाद उद्योग, मवाई और रागी (झुंगरा) प्रशोधन, काजू प्रशोधन, मंजी, चटाइयां, चटपटे मसालों का निर्माण और इन सबकी पैकिंग तथा विपणन के कार्य इसमें शामिल हैं। इसके साथ ही सब्जियों का प्रसंस्करण, आटा चक्की, दलिया, धान कुटाई, भारतीय स्वादिष्ट मिठाइयों का निर्माण, रसवंती गन्ना, रसपान, आम पापड़, पशुचारा, मुर्गी चारा, दुग्ध उत्पादों के प्रसंस्करित उत्पाद बनाने की लघु इकाइयां भी इसके अंतर्गत स्थापित की जा सकती हैं।

बहुलक और रसायन आधारित उद्योगः- चर्म शिल्प एवं चर्मशोधन, कुटीर चर्म उद्योग, कुटीर साबुन उद्योग, रबड़ की वस्तुओं का निर्माण, मोमबत्ती, कपूर और अन्य सांचा आधारित उद्योग, बिंदी, मेंहंदी निर्माण, शैंपू, इत्र निर्माण, विभिन्न

प्रकार के केश तेल, डिटर्जेंट साबुन, रैक्सीन से बनने वाले सामानों का निर्माण, हाथीदांत सींग आदि पर आधारित उद्योग और प्लास्टिक पैकेजिंग आदि विविध उद्योगों की इकाइयां इसके अंतर्गत स्थापित की जा सकती हैं।

खनिज आधारित उद्योग:- इस वर्ग के अंतर्गत करीब 15 प्रकार के उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं। मंदिर तथा इमारतों के लिये पत्थरों की कटाई और नक्काशी, पत्थर से बनने वाली उपयोगी वस्तुओं का निर्माण, स्लेट तथा स्लेट पेंसिलों का निर्माण, चूना पत्थर तथा चूना उत्पादों का निर्माण, प्लास्टर ऑफ पेरिस बनाने के उद्योग केवीआईसी द्वारा मान्य उद्योग हैं।

अभियांत्रिकी तथा गैर परंपरागत ऊर्जा उद्यम:- इस वर्ग के अंतर्गत ऊर्जा आधारित उद्योगों की स्थापना करने के लिये केवीआईसी द्वारा भरपूर मदद दी जा रही है। गोबर गैस का उत्पादन, बढ़ईगिरी और लोहारी, क्लिप, पिन, अल्यूमिनियम के घरेलू बर्तनों का निर्माण, कागज उत्पादन, सजावटी बल्ब, गिलास, बोतलें, पीतल-तांबे के बर्तन और सजावटी पात्रों का निर्माण, रेडियो, स्टेब्लाइजर, इलेक्ट्रिक एवं इलेक्ट्रॉनिक्स के अन्य सामान, घड़ियों का निर्माण, लोहे तथा तार की झझरी, लोहे का फर्नीचर व ग्रिल का निर्माण, विभिन्न प्रकार के कृषि उपकरण बनाना, लकड़ी का काम, साइकिल रिक्शा एवं म्यूजिक सिस्टम आदि बनाना, ग्रामीण यातायात के साधन बनाना, टेलिविजन आदि की मरम्मत, मोबाइल की मरम्मत, कपड़ों की रंगसाजी एवं अन्य ऊर्जा आधारित लघु उद्यगों की स्थापना करने में केवीआईसी प्रोत्साहन दे रहा है।

खादी ग्रामोद्योग हेतु चलाये जा रहे प्रोत्साहन कार्यक्रम:- खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र को गांवों की आत्मनिर्भरता के लिये जरूरी मानते हुए सरकार द्वारा अनेक प्रोत्साहन कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। सूक्ष्म, लघु और मझोले उद्यम मंत्रालय द्वारा प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम लागू किया गया है। यह एक क्रेडिट लिंक सब्सिडी कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम स्वरोजगार के मौक पैदा करने के मकसद से 2008-09 से संचालित किया जा रहा है। राज्य तथा केंद्रशासित क्षेत्रों के स्तर पर यह योजना विभिन्न बैंकों के सहयोग से, राज्य-केंद्रीय क्षेत्रीय खादी एवं ग्राम उद्योग परिषद् तथा जिला उद्योग केंद्रों के जरिए केवीआईसी द्वारा संचालित की जा रही है।

इस कार्यक्रम के तहत प्रत्येक योजनामद में निर्माण के लिये 25 लाख रुपये और सेवा क्षेत्र में 10 लाख रुपये तक का कर्ज उपलब्ध कराया जा रहा है। यानि यदि उद्यमी ग्रामीण क्षेत्रों में निर्माण क्षेत्र के अंतर्गत कोई उद्यम स्थापित करते हैं तो उन्हें 25 लाख रुपया तथा सेवा क्षेत्र के अंतर्गत उद्यम करते हैं तो 10 लाख रुपये बैंक के जरिये आसान किस्तों और ब्याज दरों पर केवीआईसी द्वारा मुहैय्या कराया जायेगा। इसके अलावा भी इस मंत्रालय के अधीन केवीआईसी के क्षेत्र को मजबूती प्रदान करने के लिये अनेक कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं।

निर्यात में भी निभा रहा है सराहनीय भूमिका:- खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग का जोर केवल गांव-देहातों में स्वरोजगार के मौके पैदा करना और साधन उपलब्ध करना ही नहीं है, अपितु तैयार माल को विपणित करने में भी यह विभिन्न स्तर पर उद्यमियों को मदद मुहैय्या करा रहा है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस क्षेत्र द्वारा 16.07 लाख लोगों को रोजगार प्रदान किया गया था। केवीआईसी के उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिये वाणिज्य मंत्रालय द्वारा निर्यात प्रोत्साहन परिषद् का गठन किया गया है। यह केवीआईसी के उत्पादों के निर्यात के लिये बड़े पैमाने पर अवसर उत्पन्न कर रहा है। इसके अलावा देश में विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शनी एवं विक्रय मेले आयोजित कर ग्रामीण भारत के विभिन्न उत्पादों को बड़े पैमाने पर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पहुंचाने के कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं और विदेशी मुद्रा अर्जित की जा रही है।

ग्रामीण भारत की आर्थिकी को सशक्त बनाने के लिये खादी ग्रामोद्योग के प्रयासों की सराहना की जानी चाहिये। परंतु आज इस प्रकार के प्रयासों की सघनता की आवश्यकता है ताकि और अधिक रोजगार के अवसर ग्रामीण और देहात स्तर पर पैदा किये जा सकें ताकि ग्रामीण भारत को 'इण्डिया' का अंतर्देशीय उपनिवेश बनने से बचाया जा सके। ●

'डिजिटल इण्डिया' से पहले चाहिए 'स्वावलंबी भारत'

मेक इन इण्डिया, स्टार्ट अप इण्डिया और डिजिटल इण्डिया के शोर में डर है कि कहीं ग्रामीण भारत खो न जाये। यूं तो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी 'यंग इण्डिया' शीर्षक से एक समाचार-पत्र प्रकाशित-संपादित करते थे। लेकिन उनके नजरिये और 'इण्डिया' शब्द को लेकर जारी मौजूदा जुमलेबाजी के फर्क को प्रस्तुत लेख में उल्लेखित उनके उपरोक्त विचारों से साफ आंका जा सकता है।

महात्मा गांधी ग्रामीण जीवनशैली के अभिन्न अंग बन चुके परंपरागत हस्तकला और दस्तकारी आधारित उद्योगों के पोषण की बात करते थे। उनका गांव आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने पर खासा जोर रहा। वह भारत को विकास के पथ

आदि से निर्मित होने वाली वस्तुएं, लोहा आदि धातुओं से निर्मित होने वाले विभिन्न औजार और उपकरण। इसके अलावा अन्य बड़े उद्योगों के लिये कच्चा माल तैयार करने वाले लघु उद्योगों की स्थापना भी गांव क्षेत्रों में की जानी चाहिये, ऐसा गांधी जी का मानना था। गांधी जी ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सबसे पहले जिस उद्योग को बढ़ावा देना चाहा, वह था खादी वस्त्र का निर्माण। खादी वस्त्र बनाने को एक ग्रामीण उद्योग के तौर पर स्थापित करने के पीछे उनका जो विचार था वह कितना व्यापक रहा होगा यह आज समझ में आ रहा है। वह ये जानते थे कि किसान अपने खेतों में अन्न उगा लेता है और साथ में पशुपालन से अपने लायक दुग्ध उत्पादन भी कर ही लेता है, परंतु तन ढंकने की समस्या उसके साथ जाड़ा-गर्मी-बरसात, भात-बारात हर मौसम-हर मौके पर बनी रहती है। इसलिये उन्होंने सबसे पहले किसानों को चरखा अपनाने को कहा और वह स्वयं भी सूत कातते थे। वास्तव में देखा जाये तो आज का खादी और ग्रामोद्योग आयोग गांधी जी की इसी विचारधारा की उत्पत्ति है।

स्वतंत्र भारत में शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार मुहैय्या कराने की दिशा में इस आयोग

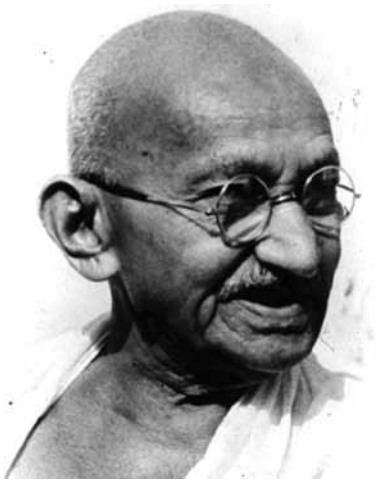

जब तक ग्रामीण भारत में पर्याप्त आजीविका के मौके मौजूद नहीं होंगे तब तक संपूर्ण भारत के विकास की कल्पना अधूरी रहेगी।

-: राष्ट्रपिता महात्मा गांधी :-

की सदा ही महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका रही है। विभिन्न प्रशिक्षणों के जरिये युवाओं को नये-नये रोजगार मुहैय्या कराये जा रहे हैं तथा उन्हें स्वावलंबी बनाया जा रहा है। कारोबार के लिए बैंकों के माध्यम से ऋण सुविधाएं भी उपलब्ध करायी जा रही हैं। इस आयोग ने ग्रामीण भारत के युवाओं को तरक्की करने के अनेक अवसर उपलब्ध कराये हैं और आज भी यह युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध करा रहा है।

इस विभाग की ओर गांवों में संचालित होने वाले परंपरागत काम-धंधों को औद्योगिक रूप में संगठित करते हुए उन्हें बढ़ावा दिया जा रहा है। अनेक उद्योग जो कि हाशिए पर चले गये थे अब फिर से पुनर्जीवित हो रहे हैं। इस क्षेत्र में युवाओं की दिलचस्पी फिर से बढ़ रही है। वर्तमान में खादी ग्रामोद्योग को सात समूहों में बांटा गया है, जिनके अंतर्गत अलग-अलग करोबार तय किये गये हैं। इसके तहत ज्यादातर ऐसे कारोबारों को शामिल किया गया है जिन कारोबारों के लिये लागत भी बैंक द्वारा मुहैय्या करायी जाती है। औद्योगिक इकाई स्थापित करने वालों को सिर्फ यह ख्याल रखना चाहिये कि उन्होंने बैंक से जो कर्ज जिस उद्देश्य के लिये लिया है उसे उसी पर खर्च करें तथा नियमानुसार किस्तें जमा करके अन्य बेरोजगारों को भी रोजगार हासिल करने में सहायता प्रदान करें। ●

गांवों को पहले गांवों की तरह तो बनाइए हुजूर

■ **गणेश चन्द्र पांडे**

गांवों को स्मार्ट बनाने वालों से पहले यह सवाल जरूर किया जाना चाहिये कि उनका गांव-देहातों का कुल अनुभव कितना है। गांवों से आज भी जिनका लगाव है, वे किसी न किसी रूप में अपने गांव से जुड़े हुए हैं और उनको अपने गांवों के अभावों को देखकर काफी अफसोस और तकलीफ होती है। गांवों को स्मार्ट बनाने की जो बातें कर रहे हैं उनके लिये गांवों के लोगों की प्रत्युत्पन्नमति का एक हिस्सा यहां उल्लेखित किया जा रहा है।

हरियाणा के गांवों से होकर सत्तर के दशक में एक सड़क का निर्माण किया जा रहा था। सड़क जहां से होकर गुजर रही थी उस पर एक गांव के नजदीक एक बड़ा सा पत्थर था। इस पत्थर को हटाये या तोड़े बगैर सड़क के

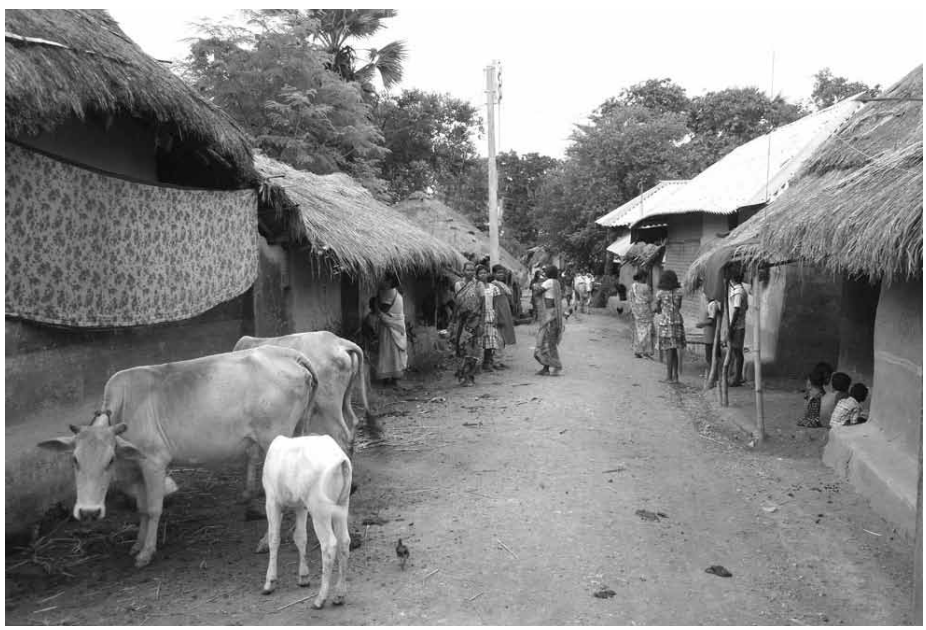

निर्माण को यहां से आगे बढ़ाना मुश्किल हो रहा था। यदि पत्थर के दूसरी ओर जाकर सड़क के निर्माण कार्य को आगे बढ़ा भी दिया जाता तो भी इस पत्थर को तोड़े बिना सड़क का कार्य निर्बाध पूरा हो सकना नामुमकिन ही था। निर्माण कार्य से संबंधित अफसरशाह और कर्मचारी रोज अपने वाहनों में उस स्थान तक आते और कुछ देर वहीं पर मंत्रणा करने के बाद बैरंग लौट जाते। नजदीक के ही खेतों में अपने कार्यों में मशगूल रहने वाला एक किसान रोज इस नजारे को देखता। एक दिन उससे रहा नहीं गया और वह भी उस पत्थर के नजदीक मंत्रणा कर रहे सरकारी हाकिमों के मजमे तक आ गया। उसने उनसे जानना चाहा कि वे रोज वहां पर आकर फिर वापस क्यों और कहां चले जाते हैं। पहले तो उन हाकिमों ने उस किसान को अनसुना कर दिया और बाद में उसे झिड़क दिया। परंतु ज्यादा उत्सुक जानने पर एक कर्मचारी ने उसे वहां पर आने और उनको पेश आ रही समस्या के बारे में बताया।

किसान यह सुनकर अवाक् रह गया। उसने कहा कि इस पत्थर को ब्लास्टिंग से क्यों नहीं फोड़ रहे। तब उस कर्मचारी ने असल समस्या के बारे में बताया कि वे लोग गांव वालों की फसल खड़ी होने के कारण फिलहाल विस्फोट से इस पत्थर को नहीं फोड़ना चाहते। जब फसल कट जायेगी तब विस्फोट से इस पत्थर को फोड़कर सड़क निर्माण का कार्य आगे बढ़ाया जायेगा। किसान यह सुनकर और भी अचंभित हुआ। उसने उनको राय दी कि आप लोग पत्थर की एक साइड में पत्थर के मुकाबले का एक गड्ढा खोदें, और फिर उसमें इसे लुढ़का दें। काम भी हो जायेगा और पैसा तथा समय दोनों बचेंगे। साथ ही पर्यावरण भी नुकसान होने से बचेगा।

सड़क निर्माण से जुड़े हाकिमों को उसका यह आइडिया जंच गया। उनको यह भी अफसोस हुआ कि वे अभी तक केवल प्रिंटपेक्षित ज्ञान के सहारे ही इस समस्या से निजात पाना चाहते थे। उपरोक्त किस्सा एक जमाने में अनेक राज्यों के सरकारी कार्यालयों में संक्षेप में परिचय पटल पर अंकित रहता था, ताकि गांव-देहात के लोगों को अधिकारीगण उपेक्षा का पात्र न समझें बल्कि उनकी मौलिक सोच का आधुनिक तकनीक के साथ उपयोग कर सकें। इसी को नवाचार कहा जाता है।

मौजूदा राजग सरकार ने भापजा के मातृ संगठन के नेता रहे डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नाम पर एक योजना रूरबन मिशन के नाम से तैयार की है। रूरबन मिशन शब्द की उत्पत्ति भी आजकल की खिचड़ी सरकारों की तर्ज पर रूरल और अर्बन शब्द की जुमला-जोड़ी से की

आज गांवों में जो लोग रह रहे हैं उनसे यदि गांवों को स्मार्ट बनाने की बात की जाये तो वे यही कहेंगे कि पहले गांवों को गांव की तरह बना दो फिर इसे स्मार्ट गांव बनाना।

गयी है। इस योजना को दिल्ली में आयोजित एक मंत्रिमंडलीय बैठक के दौरान मंजूरी दी जा चुकी है और यदि गोटी फिट बैठ गयी तो इसे संसद से बतौर कानून पारित करवा लिया जायेगा और इसके लिये इस योजना पर आधारित भावी अधिनियम को संसद में प्रस्तुत करने के नजरिये से काफी स्मार्ट तरीके से तैयार किया जा रहा है। सरकार का इरादा इस योजना पर पांच करोड़ रूपये से ज्यादा खर्च करने का है।

आज गांवों में जो लोग रह रहे हैं उनसे यदि गांवों को स्मार्ट बनाने की बात की जाये तो वे यही कहेंगे कि पहले गांवों को गांव की तरह बना दो फिर इसे स्मार्ट गांव बनाना। एक जमाना था जब प्रत्येक व्यक्ति को अपने गांव जाने का इंतजार रहता था। लोग बच्चों की स्कूली छुट्टियों में सपरिवार गांवों का रूख करते थे। तीज-त्योहारों और शादी-विवाहों के मौकों पर परदेश गये परिवार-लोग अपने गांव में इकट्ठा होते थे। गांव के परिजनों को शहर में रहने वालों की चिट्ठियों का इंतजार रहता था।सरकारी स्कूलों का स्तर बहुत अच्छा था। स्कूल में बच्चों का सर्वांगीण विकास किया जाता था। हस्तलेख से लेकर शारीरिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आज गांवों के सरकारी विद्यालयों की हालत बहुत खराब है। खुद इन विद्यालयों में नियुक्त शिक्षक अपने बच्चों को यहां नहीं पढ़ाना चाहते। ग्रामीण संस्कृति गुम हो चुकी है। खेत-खलिहान बंजर हो चुके हैं। आज गलती से किसी का मवेशी किसी दूसरे के खेत में चला जाये तो उन दोनों परिवारों के बीच में लाठियां चल जाती हैं। पानी के बंटवारे को लेकर खेत और गूल में ही लाशें बिछ जाती हैं। एक शब्द हुआ करता था- गोधूलि। जब सूर्य अस्त होने के बाद गांवों के मवेशी धूल उड़ाते हुए ग्वाल-बालों के साथ अपने-अपने ठौरों की ओर लौटते थे तो वह समय गोधूलि कहलाता था। अब गांवों में चारागाह तो है परंतु वहां किसानों के मवेशी नहीं चरते बल्कि उन चारागाहों में ग्राम प्रधान की शह पर अवैध कब्जे हैं। गांवों के मंदिरों-शिवालों में अब शाम ढलते ही घड़ियाल, ढोल, मंझीरों की आवाजें नहीं आती हैं, बल्कि वहां चरस, ताड़ी, शराब पीने वालों के अड्डे बन गये हैं। गांवों के इर्द-गिर्द अब कहीं भी कोई मेला बिना उत्पातियों के ऊधम के संपन्न नहीं होता। रही सही कसर ओछी राजनीति ने पूरी कर ली है। एक-दूसरे की जमीनों पर कब्जा करना, शराब पीकर झगड़ा करना, शौच के लिये मुंह अंधेरे निकली बच्चियों से बलात्कार करना, अनपढ़ वृद्धाओं, विधवाओं से उनकी पेंशन ठग लेना, यही सब गांवों की मौजूदा पहचान है।

हां इतना अवश्य हुआ है कि गांवों में बिजली के खंभे लग गये हैं। सस्ते चीनी मोबाइल पहुंच गये हैं, नियम विरुद्ध तथाकथित पब्लिक स्कूल खुल गये हैं, दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में भोग-विलास के लिये होटल खुल गये हैं, कदम-कदम पर शराब के ठेके खुल गये हैं, बैंकों की शाखाएं स्थापित हो गयी हैं और डाकघर वीरान हो गये हैं। गांव के श्रमदान से निर्मित साफ रास्तों की जगह अब टूटे-फूटे खड़न्जे नजर आते हैं, प्रधानमंत्री सड़क रोजगार योजना के अंतर्गत गबन करने के इरादे से बेतरतीब सड़कें बन गयी हैं जिन पर बैंकों के कर्ज की गाड़ियां अप्रशिक्षित चालकों और शोहदों के हाथें में गांव-देहातों में घूम रही हैं।

मौजूदा सरकार इन गांवों को स्मार्ट गांव बनाना चाहती है। मतलब गांवों का सामाजिक, आर्थिक और बुनियादी विकास किया जायेगा। अनेक गांवों को मिलाकर एक समूह बनाया जायेगा। और तब गांवों में शहरों जैसी 14 सुविधाएं उपलब्ध करायी जायेंगी जिनमें कौशल विकास, सूचना तकनीक, पेयजल आपूर्ति, स्वास्थ्य सुविधाएं, सफाई कचरा प्रबंधन, पक्की सड़क, विद्युत आपूर्ति, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि शामिल होंगी। परंतु यह सब गांव को गांव होने की शर्त पर क्यों मुहैय्या नहीं कराया जा सकता है? यदि गांवों को स्मार्ट बनाना है तो सबसे पहले गांवों को वह सब लौटाना होगा जो हमने उनसे छीना है। गांवों की सादगी, भोलापन और सच्चाई गांवों की आत्मनिर्भरता के लिये आज भी पहली शर्त है। ●

जैविक खेती से ही संवरेगा भविष्य

हाल ही में पंजाब के जिस क्षेत्र में सफेद मक्खी के कारण कपास की दो-तिहाई फसल बर्बाद हो गई, इस उपजाऊ क्षेत्र में इससे पूर्व सफेद मक्खी का ऐसा प्रकोप हुआ ही न था।

डॉ. वंदना शिवा

इससे पहले कि भारतीय नीति-निर्माताओं को समझ आये कि बी.टी. कपास भारतीय किसानों को कर्ज के जाल में फंसाने और उनका धन लूटने का एक जरिया मात्र है, अभी न जाने कितने और किसान मौत के मुंह में चले जाएंगे। प्रारंभ से ही बी. टी कपास पूर्णत: एक असफल प्रयोग रहा है। इस प्रयोग के एवज में हमने लाखों किसानों को खो दिया है। कपास उत्पादन क्षेत्र अब पूर्ण रूप से बी.टी. कपास क्षेत्र में बदल गये हैं। इन क्षेत्रों में अभी तक तीन-लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। जी.एम. तथा बी.टी. बीज सम्भावित कीट-नियंत्रण तकनीक के आधार पर तैयार किए गए, ताकि कीटनाशकों के प्रयोग की आवश्यकता न पड़े। 1998 से भारत में बी.टी. कपास का अवैधानिक प्रयोग हुआ और फिर 2002 में जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी ने इस प्रजाति को खेतों में बोने की अनुमति दे दी, तब से आज तक यही बात सिद्ध हुई है कि बी.टी. कपास कीटों को बढ़ावा देने वाली प्रजाति है। आंकड़े बताते हैं कि इससे पहले भारत में कपास की फसल किसी महामारी की इस हद तक शिकार नहीं हुई।

हाल ही में पंजाब के जिस क्षेत्र में सफेद मक्खी के कारण कपास की दो-तिहाई फसल बर्बाद हो गई, इस उपजाऊ क्षेत्र में इससे पूर्व सफेद मक्खी का ऐसा प्रकोप हुआ ही न था। इस घटना से प्रभावित होकर यहां 15 किसानों ने आत्महत्या कर दी। अब इस बात को सामने रखने का समय आ गया है कि जी.एम.ओ. फसलों का खेतों में परीक्षण करने से किसान कर्ज के जाल में फंस सकते हैं और इससे किसानों को आत्महत्या के लिए फिर से विवश होना पड़ेगा। अब तक बी.टी. फसलों के कारण तीन-लाख से अधिक किसानों की आत्महत्या हमारे लिए भंयकर कृषि-आपदा है। हमें इस कृषि संकट से सबक लेकर जी.एम.ओ. तकनीक की ओर जाने से देश को रोकना होगा, ताकि देश के किसान कर्ज और आत्महत्याओं के दुश्चक्र से बाहर निकल सकें। मोनसेंटो न केवल एक असफल प्रौद्योगिकी को भारतीय खेतों में थोपने पर लगा हुआ है, बल्कि वह जबरन ही हमारे छोटे-किसानों से रॉयल्टी वसूल कर उन्हें कर्ज के गर्त में धकेलने का कुचक्र रच रहा है। भारत के कई राज्यों में बीज पर रॉयल्टी के मामले दर्ज किए गये हैं। सरकार को चाहिए कि वह भ्रष्ट कम्पनियों की बजाय किसान और कृषि का संरक्षण करे। इन बड़ी बीज कम्पनियों की प्रौद्योगिक असफलता तथा रॉयल्टी वसूलने पर सरकार की पारदर्शिता नितांत आवश्यक है।

हम जन-सुनवाई के माध्यम से किसानों की आत्महत्या की पड़ताल कर रहे हैं। इस बात की आवश्यकता है कि मौत के भंवर में फंस रहे किसानों को बचाने के हर संभव प्रयास मिलकर किए जायें। आज के हालात 1980 के उस मंजर की याद दिलाते हैं, जब पंजाब के गांवों के सभी सम्पन्न और गरीब किसान मौसम परिवर्तन के चलते कृषि संकट से जूझते हुए कर्ज के जाल में जकड़ गये थे।

हरित-क्रांति के साथ ही जीन क्रांति तथा जी.एम.ओ को उच्च आय प्रदान करने तथा ग्रामीण गरीबी को दूर करने के लिहाज से लाया गया, लेकिन इसके ठीक विपरीत ये उपाय किसानों को और गरीब बनाते चले गये और कर्जे की स्थिति ने उन्हें आत्महत्या करने के लिए विवश कर दिया। तथाकथित क्रांतियों के लालच में आकर किसानों ने खेती की पारंपरिक विधियों को त्याग कर महंगे बीज और खाद खरीदी। इससे अगर किसी को लाभ पहुंचा तो वे थीं बड़ी बीज और उर्वरक कंपनियां।

पंजाब में एकल-कृषि के प्रयोग से वहां की कृषि जैव-विविधता को बहुत बड़ा नुकसान हुआ।और यही नुकसान वहां के कृषक समुदाय के लिए एक बड़ा अभिशाप बन बैठा। पंजाब आज भी हरित-क्रांति के एवज में मिली लाचारी, बीमारी, कर्ज तथा बेरोजगारी की स्थिति से उभरने की कोशिश कर रहा है।

राज्य में दो-तिहाई बी.टी. कपास की खेती बर्बाद हो गई है। पिछले चालीस वर्षों में यह स्थिति दूसरी बार देखने को मिल रही है। इससे एक बार फिर सिद्ध हो गया है कि जी.एम.ओ. तथा रासायनिक कीटनाशक कीटों को नियंत्रण करने की अप्रभावी विधियां हैं। विश्वभर के वैज्ञानिक अध्ययन यह बताते हैं कि उपरोक्त विषैले रसायन एवं विषैली आनुवांशिक प्रणाली ऐसे खरपतवारों तथा कीटों को जन्म देते हैं, जिन पर नियंत्रण पाना अत्यंत कठिन हो जाता है, लेकिन अफसोस! हमारी सरकारें इसी जहर के कारोबार पर सब्सिडी प्रदान करने की बात करती हैं।

विडंबना

पंजाब एक बार फिर बीज कंपनियों की कथनी और करनी के दुराग्रह की मार को झेल रहा है। राज्य में एक कैंसर ट्रेन चलती है जो मरीजों को भटिण्डा के धर्मार्थ अस्पताल तक ले जाती है। यहां कैंसर के मरीजों और किसानों की आत्महत्याओं का जन्म किसी न किसी रूप से कृषि रसायनों तथा विषाक्तता के कारण के रूप में मौजूद है। इन कीटों के नियंत्रण के लिए जैविक कीटनाशक ही एक मात्र विकल्प हैं।ज्ञात हो कि हरित-क्रांति के साथ जब संकर बीजों का पदार्पण पंजाब के खेतों में हुआ, तब से प्रत्येक वर्ष वहां नई तरह की बीमारियों और नए कीड़ों ने पैर पसारने प्रारंभ कर किये। पंजाब की घटना को देखकर यह कहा जा सकता है कि यहां भूरे, सफेद टिड्डे तथा हिस्पा कीटों ने महामारी के रूप में वापसी कर ली है या फिर कृषि-वैज्ञानिक नियंत्रण करने में विफल रहे हैं।

बीमारी और कीटों की पहचान के बाद कंपनियों द्वारा उपचार के रूप में कृषि-रसायनों को अपनाना किसी प्रकार का स्थाई विकल्प कभी नहीं दे सकता और वर्तमान में हुई घटना इस समस्या के लिए स्थाई समाधान की मांग करती है। गैर-जी.एम. बीज तथा प्राकृतिक कीटनाशक जहां कीटों पर नियंत्रण में सहायक होते हैं, वहीं उनसे फसलों को कोई नुकसान भी नहीं पहुंचता। इस मामले में पंजाब सहित सम्पूर्ण विश्व के किसानों को एक साथ चलने की आवश्यकता है। हमें जैविक-विधि से बने ऐसे कीटनाशकों को अपनाना होगा, जो कृषि पारिस्थितिकी पर बुरा प्रभाव न डालते हों। किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए हमें गांधी जी के दर्शन 'अहिंसा और स्वराज' को अपनाकर कार्य करना होगा। भारत के लिए वही मार्ग उचित रहेगा, जिस पर देश विगत 5000 वर्षों से लगातार सफलतापूर्वक अग्रसर होता आया है। इसके लिए हमें भारतीय गांवों को कृषि-उत्पादन हेतु प्रत्येक विधा में आत्मनिर्भर बनाना पड़ेगा। अगर हम नहीं चाहते कि फिर से पंजाब जैसी स्थिति उत्पन्न हो, तो इसके लिए हमें स्थानीय बीजों का संरक्षण करते हुए कृषि जैव-विविधता को बढ़ावा देना होगा। यही वर्तमान समय की मांग भी है। प्राकृतिक पद्धति और पारंपरिक खेती पर आधारित कृषि के माध्यम से ही हम अपने देश में नए 'अन्न-स्वराज' की स्थापना कर सकते हैं। देश तथा उसके किसानों को भुखमरी, कर्ज के कुचक्र तथा आत्महत्याओं से दूर रखने के लिए हमारे पास एक मात्र नैतिक हथियार यह है कि हम भारत को कृषि-रसायन बेचने वाली कम्पनियों के उपनिवेश बनने से दूर रखें।

-लेखिका पर्यावरणविद् तथा नवधान्य, बायोडाइवर्सिटी एंड कंजर्वेशन की संस्थापक हैं

भारत में पेटेंट मिलने में देरी से मर जाते हैं कई शोध

■ **कृषि चौपाल**

अंग्रेजी में एक कहावत है कि देरी हमेशा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। यह कहावत भारत की न्यायिक व्यवस्था पर तो सटीक बैठती ही है। बल्कि अनेक मामलों में राजनीतिक व्यवस्था पर भी फिट बैठती है।

किसी नयी तकनीक या खोज का पेटेंट हासिल करने में औसतन सात साल का समय लग जाता है। और आप जानते हैं कि इसका नतीजा क्या होता है? दरअसल जब तक आप पेटेंट हासिल करते हैं तब तक तकनीक ही बदल चुकी होती है। ऐसा केवल आम आदमी के साथ ही नहीं होता है, बल्कि भारत में इस तरह का अनुभव भारत के जनप्रिय राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम के साथ भी राष्ट्रपति बनने के पूर्व घटित हो चुका था। उन्होंने बेंगलुरू की एक मेडिकल कंपनी के आग्रह पर कंपनी के साथ मिलकर हृदय चिकित्सा में काम आने वाली एक स्टेंट का आविष्कार किया था। जिसे कलाम-राजू स्टेंट के नाम से जाना जाता है। उन्होंने यह स्टेंट उक्त कंपनी के साथ मिलकर बनाना इसलिये स्वीकार किया था, क्योंकि भारत में उन दिनों हृदय चिकित्सा काफी खर्चीली थी। और इस चिकित्सा उपचार में काम आने वाले उपकरण, जिसे कि स्टेंट कहा जाता है को क्रय करना हर किसी के वश में नहीं होता था। हालांकि हृदय रोग का चिकित्सा उपचार आज भी प्रत्येक आम भारतीय के बूते से लगभग बाहर की बात है।

पूर्व राष्ट्रपति कलाम द्वारा ईजाद की गयी सस्ती स्टेंट दरअसल पेटेंट की प्रक्रिया से गुजरकर जब तक मार्केट में पहुंची तब तक तकनीक में काफी बदलाव आ चुके थे। इसलिये इस स्टेंट का हृदय चिकित्सा में काफी कम समय तक ही उपयोग किया जा सका। परंतु इस स्टेंट के शोध से जुड़ने के उनके नजरिये को आज भी पूरी दुनिया सलाम करती है। वास्तव में वे चाहते थे कि आम भारतीय को हृदय रोगों का सस्ता तथा बढ़िया इलाज सुलभ हो सके।

हाल ही में नीति आयोग के तहत आविष्कारों को लेकर गठित एक विशेषज्ञ समिति ने वर्तमान में बौद्धिक संपदा के अधिकारों के प्रावधानों एवं संरक्षण पर अपनी राय व्यक्त की है। समिति द्वारा इस मसले पर प्रधानमंत्री कार्यालय को सौंपी गयी एक रपट में पेटेंट हासिल करने की मौजूदा प्रक्रिया पर गहन चिंता व्यक्त की गयी है। रपट में स्पष्ट किया गया है कि अमेरिका जैसे विकसित मुल्क सहित तमाम दुनिया के प्रमुख देशों में पेटेंट हासिल करने में औसतन केवल दो साल का समय लगता है। परंतु भारत में किसी नयी तकनीक या खोज का पेटेंट हासिल करने में औसतन सात साल का समय लगता है। अनेक मामलों में तो दशकों तक पेटेंट के आवेदन की फाइल धूल फांकते रहती है और पेटेंट हासिल होने तक आवेदन का औचित्य ही समाप्त हो चुका होता है। क्योंकि इस मध्य आवेदित तकनीकें और खोजें पुरानी पड़ चुकी होती हैं तथा बाजार में नयी तकनीकें और खोजें अपने पैर जमा चुकी होती हैं।

समिति द्वारा प्रधानमंत्री कार्यालय को सौंपी गयी रपट में देश में तकनीकी खोजों और उसकी अधिकारिता संरक्षण एवं पेटेंट को लेकर पेटेंट कार्यालयों की वर्तमान स्थितियों को सुधारने की पुरजोर वकालत की गयी है। समिति द्वारा सौंपी गयी रपट में यह कहा गया है कि वर्ष 2013 के दौरान भारतीय पेटेंट कार्यालय में एक लाख 94 हजार विभिन्न तकनीकों और खोजों के पेटेंट आवेदन विचाराधीन हैं।

रपट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि पेटेंट के मामले में अपनायी जाने वाली इस विलंबित प्रक्रिया से तकनीकी खोजों का क्षेत्र ही नहीं अपितु खोजों और शोधों से जुड़े लोग भी काफी मायूस होते जा रहे हैं। इसका सीधा असर तकनीकी शोधों पर व्यय करने वाले निजी संस्थानों पर भी पड़ता है। वे तकनीकी खोजों के क्षेत्र में पूंजी निवेश करने से कतराते हैं।

दरअसल कृषि क्षेत्र से जुड़े शोधों और खोजों का क्षेत्र इस कारण सबसे ज्यादा दुष्प्रभावित हो रहा है। कृषि क्षेत्र से संबंधित नयी खोजों और तकनीकों में निजी निवेश का भी इसके कारण हतोत्साहित होने का अंदेशा है। ●

बैंकों का मायाजाल

किसानों को घाटा क्यों आता है? खाद्य प्रसंस्करण उत्पाद बेचने वाली कंपनियों को मुनाफा कैसे होता है? कीटनाशक और खाद बेचने वाली कंपनियां घाटे में क्यों नहीं जाती हैं? बैंकों को सदा मुनाफा क्यों होता है? यह कुछ ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर न तो कभी तलाशने की कोशिश की गयी और न ही सरकारें इन सवालों को उठाती हैं?

गणेश चन्द्र पाण्डे

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का दारोमदार उस देश के बैंकों पर निर्भर होता है। सरकार केवल दिशानिर्देश जारी करती है। इन दिशानिर्देशों पर अमल करना या नहीं करना बैंकों के साथ मिल-बैठकर सरकारें तय करती हैं। यह एक आम धारणा विकसित कर दी गयी है कि किसान कर्जे के कारण घाटे में जा रहे हैं। आइये अब हम बैंकों के इतिहास पर नजर डालते हुए बैंकों की भूमिका पर विचार करेंगे।

लगभग 300 वर्ष पूर्व बैंकों की शुरुआत मानी जाती है। सन् 1694 में तत्कालीन इंग्लैण्ड में कुछ साहूकारों द्वारा मिलकर 'बैंक ऑफ इंग्लैण्ड' की स्थापना की गयी। इससे पहले संबंधित राज्यों-देशों की सरकारें मुद्रा का निर्माण और प्रचलन करती थीं। यह मुद्राएं विभिन्न रूपों में होती थीं। सोने के सिक्के, चांदी के सिक्के, तांबे के सिक्के आदि। भारत में मुगल सम्राट हुमायूं के शासनकाल के दौरान एक भिश्ती ने चमड़े के सिक्के भी प्रचलित कर दिये थे। इंग्लैण्ड की राजकुमारी मैरी से 1677 में शादी करने के बाद विलियम तृतीय ने 1689 में इंग्लैण्ड की बागडोर संभाली। कुछ समय बाद राजा विलियम का फ्रांस से युद्ध हो गया। युद्ध के खर्चों के लिये उसने अपने देश के मुद्रा परिवर्तकों से 12 लाख पौंड कर्ज मांगे। मुद्रा परिवर्तकों ने राजा को दो शर्तों पर कर्ज दिया। राजा को इन शर्तों के अधीन ब्याज देना था परंतु मूल पूंजी नहीं लौटानी थी। इंग्लैण्ड के राजा को मुद्रा परिवर्तकों को इंग्लैण्ड की मुद्रा छापने हेतु एक केंद्रीय बैंक- 'बैंक ऑफ इंग्लैण्ड' की स्थापना के लिये स्वीकृति देनी थी। दूसरी शर्त यह थी कि सरकार स्वयं मुद्रा नहीं छापेगी बल्कि बैंक सरकार को 8 फीसदी सालाना दर से ब्याज पर कर्ज देगा और बैंक का कर्ज चुकाने के लिए सरकार जनता से कर वसूलने की व्यवस्था अपनायेगी। इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा अपनायी गयी इस कर आधारित अर्थव्यवस्था से पूर्व दुनिया के मुल्कों में रिआया पर कराधान की प्रथा बरायनाम थी। भारत में भी इस्लाम धर्मावलंबियों ने कराधान प्रणाली अपनायी परंतु वह कर तीर्थयात्रा आदि पर आरोपित होता था, जिसे 'जजिया' कर के नाम से जाना जाता है। परंतु अंग्रेजों द्वारा भारत में अपना शासन स्थापित करने के बाद भारत के राजे-रजवाड़ों के साथ मिलकर कराधान आधारित अर्थव्यवस्था को प्रमुखता से अपनाया गया।

इंग्लैण्ड में उक्त समझौते के बाद अपनायी गयी अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली ने पूरी दुनिया में अधिकांश सरकारों (राजतंत्रों तथा अन्य व्यवस्थाओं) के आर्थिक परिदृश्य को परिवर्तित कर दिया। इस प्रणाली के वैश्विक स्तर पर विस्तारित होने के बाद अधिकांश मुल्कों में मुद्रा का निर्माण तथा प्रचलन संबंधित मुल्कों की सरकारों के हाथों से निकलकर व्यक्तिगत संस्थाओं और पूंजीपतियों के कब्जे में आ गया। जिन्हें कि आज की अभिजात्य शब्दावली में हम बैंकर (महाजन) के नाम से जानते हैं। बैंकरों यानि महाजनों के इन समूहों का जनता की गाढ़ी कमाई को लूटने का यह विद्रूप इंग्लैण्ड के बाद वाया अमेरिका होते हुए अधिकांश विश्व में विस्तारित हो गया। इंग्लैण्ड और अमेरिका सहित यूरोप की तत्कालीन सरकारों को जब भी पूंजी की आवश्यकता होती तो वह अपने केंद्रीयकृत बैंकों के पास गुहार लगाते और वे बैंक सरकार की मांग के अनुसार मुद्रा छाप कर सरकार को थमा देते। बैंकों को मुद्रा छापने में अपनी ओर से किसी प्रकार का अन्यथा निवेश नहीं करना होता था। यानि खेल ऐसा था कि हींग लगे ना फिटकरी रंग चोखा आये। इन बैंकरों के दबाव में सरकारों को जनता पर करों का दबाव बढ़ाते रहना जरूरी हो गया था।

अमेरिका जो कि कभी इंग्लैण्ड का ही उपनिवेश रह चुका है, उसकी अर्थव्यवस्था से जनता ने रुष्ट होकर विद्रोह कर दिया और अमेरिका के लगभग एक दर्जन प्रांतों ने एक साथ मिलकर, तत्कालीन शोषक व्यवस्था की खिलाफत की और अंततः अमेरिका 1776 में इंग्लैण्ड की औपनिवेशिक दासता से मुक्त होकर, एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित हो गया। अमरीका इंग्लैण्ड से तो स्वतंत्र हो गया परंतु वहां मौजूद आर्थिक शक्ति संपन्न ताकतों का व्यवस्था पर दबदबा कायम रहा और उन्होंने मिलकर अमरीका में दो केंद्रीय बैंकों की स्थापना करने के बाद इन्हीं बैंकों से छापी जाने वाली मुद्रा को तत्कालीन अमरीकी सरकार से वैध मुद्रा के तौर पर प्रचलित करवाने में भी सफलता हासिल कर ली। इस आर्थिक प्रणाली के दोषों से एक ओर जहां जनता नाराज थी वहीं दूसरी ओर तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति ऐंड्यू जैक्सन भी इसके खिलाफ थे। जैक्सन ने केंद्रीयकृत बैंक को बंद करने का आदेश सरकार से जारी करवाया और केंद्रीयकृत बैंक बंद हो गये। लेकिन अमरीका संघ राज्य में शामिल प्रांतों में स्थित बैंक अपने जमा सोने की गारण्टी पर आवश्यकतानुसार समय-समय पर मुद्रा का निर्माण करते रहे। यह मुद्रा उन प्रांतों में प्रचलित होती रही।

शायद यह एक अनसुलझा रहस्य पूंजीवादी व्यवस्थाओं के जिंदा रहते कभी भी आम जनता तक न पहुंच पाये कि आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था को परिभाषित करने वाले चिंतक और

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की हत्या के पीछे भी मुनाफा और कर आधारित इसी क्रूर आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ था। दरअसल 1863 में जब तत्कालीन अमेरिका में भीषण गृहयुद्ध छिड़ गया तो राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन सरकार को पूंजी की जरूरत पड़ी। वह तत्कालीन प्रांतीय बैंकरों के पास पूंजी की व्यवस्था करने की मांग लेकर पहुंचे, परंतु उन बैंकरों ने लिंकन से पूंजी की व्यवस्था करने के एवज में भारी ब्याज की मांग की। लिंकन इतनी भारी-भरकम ब्याज दर की उन बैंकरों से उम्मीद नहीं कर रहे थे और वह बैंकरों से उस राष्ट्रीय संकट के समय सहायता की अपेक्षा कर रहे थे। उन्होंने बैंकरों की वह मांग ठुकरा दी तथा अपने मुख्य सचिव की सलाह पर स्वयं ही मुद्रा का निर्माण किया और गृहयुद्ध पर भी सफलतापूर्वक काबू पा लिया। उनकी इस सफलता से तिलमिलाये तत्कालीन बैंकरों ने

अब्राहम लिंकन की किराये के हत्यारे से सन् 1865 में हत्या करवा दी।

लिंकन की दु:खद हत्या के बाद अमेरिकी अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था में उतार-चढ़ाव आते रहे परंतु अमेरिका जागरूक नागरिकों का लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के कारण उस अशांति के दौर में भी एक राष्ट्र के तौर पर विकसित होता रहा। उधर पूंजीवादी विचारधारा के समर्थक बैंकर उस अशांति के दौर में स्वयं को स्थापित करने का मौका तलाश रहे थे। अंतत: उन्होंने एक सोची-समझी साजिश के तहत् सन् 1907 में छोटे बैंकरों के बैंकों के गबन और घाटे की अफवाह फैलाकर छोटे बैंकरों को नाकामयाब करवा दिया और स्वयं ही यह समाधान प्रस्तुत किया कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था को संभालने के लिए एक केंद्रीयकृत निरंकुश बैंकिंग प्रतिष्ठान की आवश्यकता है। इस प्रकार बड़े पूंजीपतियों और बड़े बैंकरों ने 1913 में एक केंद्रीय बैंक की स्थापना करवाने में सफलता प्राप्त कर ली जिसे 'फैडरल रिजर्व' नाम दिया गया।

वास्तव में आज दुनिया के अधिकांश पूंजीवादी मुल्कों में जो केंद्रीकृत बैंकों की स्थापना की गयी है, भले ही उनका नाम, स्थान या संचालन पृथक-पृथक हो रहा हो परंतु इनकी प्रवृत्तियां और प्रणाली लगभग एक जैसी होती है। इसी प्रवृत्ति के तहत भारत में भी तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा सन् 1934 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना की गयी। गौरतलब है कि आज हम जिस भारतीय रिजर्व बैंक को सरकार के केंद्रीय बैंक के तौर पर जानते हैं, वह अपनी स्थापना के समय से लेकर बहुत बाद तक निजी हाथों में रहा और 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। भारत का केंद्रीय बैंक तो राष्ट्रीयकृत कर दिया गया परंतु बहुत बाद तक अनेक बैंक निजी हाथों में रहकर ही कारोबार करते रहे। यहां तक कि बीमा कंपनियां भी निजी हाथों में ही रहीं और सरकार के साथ मिलकर अपना निरंकुश कारोबार करती रहीं। भारतीय रिजर्व बैंक सहित भारत के अनेक निजी बैंक व बीमा कंपनियों में भारत के बड़े पूंजीपतियों, औद्योगिक घरानों, राजपरिवारों, नवाबों, सामंतों और राजनेताओं आदि की पूंजी निवेशित थी और वे इन संस्थानों के मुनाफे में एक भारी हिस्से के हकदार थे।

10 जुलाई 1969 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी ने भारत के 10 बैंकों को एक साथ राष्ट्रीयकृत करने में सफलता प्राप्त की। आज भले ही दुनिया के बहुत से देश संयुक्त राष्ट्र संघ से मान्यता प्राप्त राजनीतिक रूप से स्वतंत्र शासन व्यवस्थाधारक देश हैं परंतु अधिकांश मुल्कों में आज भी पूंजीपतियों द्वारा ही बैंकों के माध्यम से सरकारें परोक्षत: संचालित की जा रही हैं। दुनिया के प्रमुख बैंकरों ने 'बैंक ऑफ इंटरनेशनल सैटलमैंट' बनाकर सारी दुनिया की आर्थिक प्रणाली को अपने ही प्रभाव में रखा हुआ है। आम जनता इसको इस प्रकार समझ सकती है कि आज भी भारत का केंद्रीय बैंक केवल 5 फीसदी पूंजी का निर्माण कर पाता है, शेष 95 फीसदी पूंजी का निर्माण देश के निजी बैंकों द्वारा ही किया जा रहा है। इस विद्रूप को और साफ तौर पर हमारे किसान भाई इस तरह समझ सकते हैं कि बैंक के पास जब भी कोई व्यक्ति या संस्था कर्ज के लिये जाती है तो बैंक उन्हें कोई सोने-चांदी की अशर्फियां या मुद्राओं की थैलियां नहीं थमाता है और ना ही नोटों की गड्डियां अपनी लागत से थमाता है, बल्कि वह कर्जदार के खाते में कर्ज की रकम लिख देता है। ध्यान देने वाली बात है कि नोट या मुद्रा छापने का काम तो रिजर्व बैंक करता है और वह भी केवल 5 फीसदी तक ही नोटों को निर्गत करता है।

दरअसल बैंकों के इस छलावे के कारोबार ने काल्पनिक पूंजी की भारी मांग पैदा कर दी है। और यह साधारण सा तथ्य सभी जानते हैं कि इन बैंकों के पास न तो अपना सोना है और ना ही अपनी संपत्ति है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि दुनिया के अनेक खरबपति बैंकरों की ये खामोश खूनी दुकानें किराये के खोखों में चल रही हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से और बैंकरों के व्यवसाय की प्रक्रिया और इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस क्रूर पूंजी निर्माण व्यवस्था के पंजों में दिन-रात खेतों में खटने वाले किसान, तमाम फैक्ट्रियों में घण्टों अपना खून-पसीना बहाने वाले मेहनतकश मजदूर, तकनीशियन, इंजीनियर, व्यापारी, व्यवसायी सभी की गर्दनें फंसी हुई हैं। वे एक कर्ज से या एक बैंक के कर्ज से उबरते हैं तो दूसरे बैंक के कर्ज में फंस जाते हैं और वह भी पिछले कर्ज से ज्यादा ब्याज दर पर। यह कितने आश्चर्य की बात है कि आज इस छलावे पर आधारित पूंजी का अधिकांश मालिकाना कब्जा उन लोगों या बैंकों के पास है, जिनकी यह पूंजी या संसाधन कभी रहे ही नहीं। तमाम बैंक और बड़े औद्योगिक घराने, शेयर बाजार तथा इसी तरह के झूठे वायदों के कारोबार के आधार पर जनता की या यूं कहें कि सरकारों की कमाई को अपनी तिजोरी में जमा कर रहे हैं। दूसरी ओर इसी क्रूर और निर्दयी अर्थव्यवस्था के शिकार होकर जहां एक ओर किसान, जवान, व्यापारी और उत्पादक वर्ग परेशान हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारें कर्जे में आकंठ डूब रही हैं। इस प्रक्रिया को उलटे बगैर केवल भारत जैसे विकासशील ही नहीं अपितु विश्व के अन्य विकसित मुल्कों की अर्थव्यवस्था को भी पटरी पर नहीं लाया जा सकता है। जब तक विश्व में श्रम के शोषण पर आधारित यह छलावाभरी सूदखोर आर्थिक प्रणाली मौजूद रहेगी तब तक विश्व में शांति की स्थापना का सपना भी एक छलावा ही समझा जाये तो ज्यादा बेहतर और यथार्थ होगा। ●

ताकि सलामत रहे दलहन-तिलहन

भारतीय जनता पार्टी नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के पदारूढ़ होते ही पेट्रोलियम की कीमतों में तो उतार आया परंतु आम आदमी के उपयोग की वस्तुएं खासकर खाने-पीने की चीजों की कीमतों में बढ़ोत्तरी का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह सरकार प्रायोजित तमाम छापेमारी टाइप कार्रवाईयों के बावजूद जारी है।

■ **विशेष संवाददाता**

दालों और सब्जियों की कीमतों में पूरे वर्षभर बेतहाशा वृद्धि और कीमतों की निरंकुशता पर अंकुश लगाने में नाकामयाबी से, बिहार की चुनावी वैतरणी में अपने सहयोगियों समेत डूब चुके राजग ने, फुरसत मिलते ही दिवाली के मौके पर पहला कर्मकांड दलहन की फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोत्तरी का संपादित किया है।

भारतीय जनता पार्टी नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के पदारूढ़ होते ही पेट्रोलियम की कीमतों में तो उतार आया परंतु आम आदमी के उपयोग की वस्तुएं खासकर खाने-पीने की चीजों की कीमतों में बढ़ोत्तरी का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह सरकार प्रायोजित तमाम छापेमारी टाइप कार्रवाईयों के बावजूद जारी है। सबसे ज्यादा हाहाकार अरहर की दाल और प्याज-टमाटर-आलू जैसी आम सब्जियों की कीमतों को लेकर बना रहा। महंगाई पर अंकुश नहीं लगा सकना भी बिहार विधानसभा चुनावों में राजग की असफलता का एक प्रमुख कारण रहा, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है। राजधानी में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में आर्थिक मामलों की मंत्रिमण्डलीय समिति की बैठक में जारी रबी सीजन की फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य से संबंधित कृषि मंत्रालय के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की गयी। इस बैठक के दौरान कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा पेश किये गये प्रस्तावों को भी यथावत् स्वीकार कर स्वीकृत कर दिया गया। सरकार द्वारा दलहन की कीमतों को प्रोत्साहित किया जाना सरकार का एक अच्छा प्रयास कहा जा सकता है, परंतु कीमतों में प्रोत्साहन के नतीजे तभी सकारात्मक होंगे जबकि किसान दलहन की खेती की तरफ आकर्षित होंगे। वास्तविकता यह है कि दालों की कीमतें भले ही मछली-चिकन की कीमतों को भी पार कर गयी हों और सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति के जरिये इनकी कीमतों को प्रोत्साहित कर रही हो, परंतु किसानों का दलहन की खेती से मोहभंग जारी है। मोहभंग तो हालांकि सरकारी नीतियों की नाकामियों और अन्य प्राकृतिक वजहों के चलते खेतीबाड़ी से भी दूर होता जा रहा है।

दलहन खेती के परंपरागत उत्तरी राज्यों में लगभग 25 लाख हेक्टेयर रकबे में गिरावट दर्ज की गयी है। भारत के उत्तरी राज्यों में से पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में तो किसानों ने दलहन की खेती लगभग छोड़ ही दी है और सोयाबीन आदि जैसी नकदी दलहन-तिलहन फसलों को उगाने पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, जम्मू-कश्मीर के किसान ही उत्तर भारत में दलहन की फसलें किसी प्रकार ले पा रहे हैं और वह भी काफी कम उत्पादकता के साथ।

वर्ष 1970-71 में देश में दलहन की कुल खेती का रकबा 2.25 करोड़ हेक्टेयर था जो आज लगभग साढ़े चार दशक बाद भी मामूली बढ़त के साथ मात्र 2.47 करोड़ हेक्टेयर पर थमा हुआ है। इस दौरान यह जरूर हुआ कि उत्तरी भारत के कुछ राज्यों में दलहन की खेती में कमी आयी तो दक्षिण भारत के कुछ गिने-चुने राज्यों में दलहन की खेती में मामूली बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी। दरअसल दक्षिण भारत में दालों के उत्पादन के लिये परती और असिंचित भूमि के उपयोग को बढ़ाने के नजरिये से उस पर दालों की खेती प्रारंभ की गयी। यही कारण रहा कि उस रकबे में दालों की पैदावार को समुचित तौर पर बढ़ाया नहीं जा सका है।

भारत में दालों की पैदावार कम होने के अनेक कारण बताये जा सकते हैं परंतु उनमें से जो प्रमुख हैं, वे हैं अच्छी पैदावार वाली तथा रोगरोधी प्रजातियों का अभाव, सिंचाई सुविधाओं की कमी, सोयाबीन के उत्पादन को बढ़ावा तथा प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में माकूल वृद्धि नहीं कर पाना। दरअसल मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे कृषि प्रधान राज्यों में दलहन का स्थान सोयाबीन की पैदावार ने ले लिया है। सोयाबीन हालांकि खरीफ की प्रमुख फसल मानी जाती है। सोयाबीन की बहुउपयोगिता तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी बढ़ती मांग के कारण देश के कुछ विकसित और साधन संपन्न राज्यों में इसकी खेती को बढ़ावा दिया गया, जिससे कि इन राज्यों सहित भारत के परंपरागत दलहन उत्पादक क्षेत्रों में दलहन का रकबा घटता चला गया। हरित क्रांति के दौरान भी दलहन के उत्पादन को बढ़ाने की बजाय सोयाबीन के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित किया जाना भी इसका एक प्रमुख कारण रहा। वर्तमान में भारत में दालों की सालाना खपत औसतन 235 लाख टन है।

जबकि औसत उत्पादन 175 लाख टन है। साथ ही प्रतिवर्ष औसतन 2.75 करोड़ की आबादी की बढ़ोत्तरी के कारण खपत में और वृद्धि हो जाती है। कुछ अर्थ-वित्त विश्लेषक भारत के लोगों की आय में वृद्धि को भी दालों की खपत के साथ जोड़कर देख रहे हैं और इसे दालों की महंगाई का एक प्रमुख कारण मान रहे हैं। परंतु यह एक गौण कारण कहा जा सकता है। जबकि दालों की जमाखोरी को महंगाई से जोड़कर देखा जाता तो वह ज्यादा उचित होता।

मांग और आपूर्ति के बीच की इस खाई को पाटने की कभी भी सशक्त राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ कोशिश नहीं की गयी। नतीजा यह हुआ कि पेट्रोलियम और खाद्य तेलों के बाद दालों का तीसरा स्थान है, जिसके लिये देश आयात पर निर्भर है। दूसरा कारण यह रहा कि गेहूं-धान आदि की भांति दालों को न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति से काफी समय तक बाहर रखा गया। गौरतलब है कि वर्ष 2014 के दौरान देश में चने का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ, परंतु किसानों को थोक बाजार में चने का काफी कम भाव मिल पाया। उस वर्ष लगभग 95 लाख टन चने का उत्पादन हुआ और सरकार द्वारा इसका न्यूनतम समर्थन मूल्य 3100 रुपया प्रति कुंतल घोषित किया गया परंतु उत्पादन में वृद्धि के चलते यह थोक बाजार में औसतन 2600 से 2700 रुपया प्रति कुंतल के भाव से बिक गया।

दलहन का प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी हमारे मुल्क में विश्व-औसत के मुकाबले काफी कम है। दलहन का वर्तमान वैश्विक औसत उत्पादन तकरीबन 14.5 कुंतल प्रति हेक्टेयर है जबकि भारत का प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन 7.5 से 8 कुंतल प्रति हेक्टेयर पर थमा हुआ है। जाहिर है कि यदि भारत दालों के वैश्विक औसत के लक्ष्य को भी प्राप्त करने में कामयाब हो जाता है तो दलहन के मामले में देश आत्मनिर्भर हो जायेगा।

जारी रबी सीजन के लिये केंद्र सरकार ने फिलहाल दलहन की अनेक किस्मों समेत गेहूं, जौ, चना, सरसों, सूरजमुखी, मसूर आदि के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में वृद्धि की घोषणा कर दी है। साथ ही सरकार ने चना, मसूर के एमएसपी पर प्रति कुंतल 75 रुपये की दर से अतिरिक्त बोनस भी देने की घोषणा की है। दलहन फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 250 रुपया प्रति कुंतल की दर से बढ़ोत्तरी का ऐलान किया गया है तथा गेहूं के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 75 रुपया प्रति कुंतल की वृद्धि की गयी है। जौ का एमएसपी 1225 घोषित किया है। जबकि खुदरा बाजार में जौ काफी महंगा बिकता है। इस बार सरकार ने एमएसपी का ऐलान करने के साथ ही रबी सीजन की काफी सतर्क शुरुआत करते हुए बीपीएल तथा एपीएल कार्डधारकों हेतु 27 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न के आवंटन की भी घोषणा की है। यह अतिरिक्त खाद्यान्न आगामी 6 महीने के दौरान उन राज्यों में वितरित होगा जिन राज्यों में किसी कारणवश अभी तक खाद्य सुरक्षा विधेयक प्रवृत्त नहीं हो पाया है।

दलहनी फसलों का भी अतिरिक्त भण्डार स्थापित करने पर विचार किया जा रहा है ताकि भविष्य में महंगाई से निपटने में सरकार को आसानी हो। गेहूं तथा धान आदि खाद्यान्नों का अतिरिक्त भण्डार तो सरकार पूर्व से ही रखती आयी है, परंतु पिछले एक वर्ष के दौरान दालों की कीमतों पर राजग ने जो फजीहत झेली है और बहुत हद तक इसी कारण दिल्ली और बिहार में विधानसभा चुनावों में औधे मुंह गिरी है, संभवतः इसी को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार इन घोषणाओं और उपायों के सहारे भविष्य में पंजाब और उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनावों को फतेह करने का मंसूबा भी बना रही होगी। ●

बर्बाद हुआ किसान, मुआवजा डकार गये जमींदार

दिल्ली सरकार ने पिछले रबी की बारिश से बर्बाद हुई फसल का मुआवजा जमींदारों को वितरित कर दिया जिससे किसानों में भारी रोष है। गौरतलब है कि पिछले रबी सीजन में असमय बरसात और ओलाबारी से गेहूं, जौ, सरसों आदि की तैयार खड़ी फसलों को भारी नुकसान पहुंचा था। केंद्र और राज्य सरकारों ने इस नुकसान की भरपायी करने के लिये किसानों को राज सहायता प्रदान करने का ऐलान किया। दिल्ली सरकार ने भी दिल्ली के किसानों को भारी-भरकम राज सहायता प्रदान करने की घोषणा की। इसी सिलसिले में दिल्ली सरकार द्वारा पिछले दिनों दिल्ली के अनेक जमींदारों को सहायता राशि के धनादेश बांटे परंतु इन जमींदारों की जमीनों पर खेती करने वाले किसानों को कोई राहत सहायता नहीं दी गयी। ज्यादातर किसान सरकार के इस रवैय्ये से खफा हैं।

दिल्ली सरकार के आला अधिकारियों से लेकर मंत्री-विधायकों और मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने अनेक गांवों का दौरा किया। गांवों का सर्वेक्षण भी किया गया। सर्वेक्षणों के प्रतिवेदनों के अनुसार 90 फीसद फसल बर्बाद दिखायी गयी है। दिल्ली सरकार द्वारा 70 फीसद फसलों के लिये मुआवजा भी दिया गया है। दिल्ली के अन्य विधानसभा क्षेत्रों की तरह नजफगढ़ और मटियाला विधानसभा क्षेत्र के 20-20 गांवों और मुंडका विधानसभा क्षेत्र के 20 से 25 गांवों के जमींदारों को मुआवजा दिया गया। चूंकि दिल्ली सरकार ने उन्हें मुआवजा देने का निर्णय लिया था जिसके नाम जमीन दर्ज थी, जाहिर है कि इस आधार पर जमींदारों के खेतों में काम करने वाले और जमींदारों से खेत लेकर उनमें खेती करने वाले किसानों को मुआवजा पाने के लिये योग्य नहीं माना गया। मुआवजा राशि आवंटित कर दी गयी है और जमीनों के मालिकों ने मुआवजा लेकर चुप्पी साध ली है।

सरकार एक ओर किसानों को उनकी बर्बाद फसलों का सर्वाधिक मुआवजा दिये जाने को लेकर अपनी पीठ ठोंक रही है, दूसरी ओर किसान सरकार से मिले चेक लेकर उन्हें कैश करवाने के लिये दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। कराला गांव में किसानों को धनादेश तो दे दिये गये परंतु वह पिछली तारीखों के हैं, जोकि तकनीकी रूप से कैश नहीं हो सकते। ध्यातव्य है कि पिछले रबी सीजन में बेमौसम बारिश के कारण गेहूं, जौ, सरसों आदि की फसल बर्बाद हो गयी थी। सरकार ने इस नुकसान से किसानों को राहत देने के लिये 14 हजार रुपये प्रति एकड़ के हिसाब से मुआवजा तय किया था। इसी मुआवजा राशि का वितरण पिछले कुछ समय से चल रहा है। परंतु अनेकों किसानों को विगत जून माह के चेक थमाये गये हैं। बैंक के नियमों के मुताबिक चेक की वैधता केवल तीन माह होती है जो कि पिछले सितंबर माह में ही खत्म हो चुकी है। किसान इन चेकों को लेकर जब बैंकों के पास पहुंचे तो उन्हें हकीकत पता चली।

किसानों का कहना है कि वे अपने चेकों को लेकर, अपनी फरियाद लेकर पटवारी से लेकर एसडीएम कार्यालय तक के चक्कर लगा चुके हैं, परंतु कोई नतीजा नहीं निकल पाया है। उधर उत्तर पश्चिमी (दिल्ली) जिला के जिलाधिकारी का कहना है कि संबंधित विभाग द्वारा यह कोशिश की जा रही है कि जिस तारीख को चेक तैयार हो जाए उन्हें दो दिनों के भीतर ही संबंधित किसानों को दे दिया जाये। अनेक गांवों में गांव की चौपाल पर ही शिविर लगाकर चेक हाथों-हाथ बनाकर भी दिये जा रहे हैं। उनका यह भी कहना है कि किसान अपने-अपने पुराने चेकों को आवेदन के साथ संबंधित एसडीएम या जिलाधिकारी कार्यालय में जमा करा दें, उसे चेक को सुधारकर दे दिया जायेगा। ●

जौ की खेती

■ **कृषि चौपाल**

जौ की खेती भारत के ठण्डे पर्वतीय इलाकों में की जाती है। यह रबी की फसल है। इसकी अच्छी पैदावार लेने के लिए निम्नलिखित बातों का घ्यान रखना चाहिए:-

क. परिस्थित के अनुसार उपयुक्त प्रजातियों का चयन कर शुद्ध एवं प्रमाणित बीज बोयें।

ख. मृदा परीक्षण के आधार पर संस्तुति अनुसार उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करे।

ग. खरपतवारों के नियंत्रण हेतु संस्तुत रसायनों का समय से प्रयोग किया जायें।

घ. रोग एवं कीटों की रोकथाम हेतु संस्तुति अनुसार रसायनों का प्रयोग किया जाय तथा उपलब्धता के अनुसार कल्ले फूटते समय एवं दुग्धावस्था में सिचाई करें।

ड. उपलब्धता के अनुसार सिंचाई कल्ले फूटते समय एवं दुग्धावस्था में सिंचाई न करें।

सिंचाई एवं उर्वरक के सीमित साधन एवं सिंचित दशा में जौ की खेती गेहूँ की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। सिंचित और असिंचित तथा बिलम्ब से और ऊसर भूमि में जौ की खेती का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

बोने का समय

असिंचित: सभी क्षेत्रों में 20 अक्तूबर से 10 नवम्बर तक

सिंचित समय में: 25 नवम्बर तक

बिलम्ब से: दिसम्बर के दूसरे पखवाड़े तक

बीज की मात्रा बुवाई की विधि

असिंचित: 100 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

सिंचित: 75 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

पछेती बुवाई: 100 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

बुवाई की विधि

- बीज हल के पीछे कुंदों में 23 सेमी. की दूरी पर 5-6 सेमी. गहरा बोयें।
- असिंचित दशा में बुवाई 6-8 सेमी. गहराई में करें जिससे जमाव के लिए नमी मिल सके।

खेत की तैयारी

देशी हल या डिस्क से दो-तीन जुताइयां करके खेत तैयार कर लेना चाहिए।

सिंचाई

दो सिंचाई फसल की पहली कल्ले फूटते समय बुवाई 10-15 दिनों बाद व दूसरी दुग्धावस्था में करें। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो कल्ले फूटते समय करें। माल्ट हेतु जौ की खेती में एक अतिरिक्त सिचाई की आवश्यकता पड़ती है। ऊसर भूमि में तीन सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण

जौ की फसल में बथुआ, हिरनखुरी, प्याजी कृष्णनील आदि चौड़ी पत्ती वाले तथा गेहूसा तथा जंगली जई आदि खरपतवारों की रोकथाम के लिए गेहूं की फसल में प्रयोग किये जाने वाले तृणनाशी रसायनों का छिड़काव करें।

फसल सुरक्षा

आवृत कंडुआ रोग की पहचान

बालियों में दानो के स्थान पर फफूंदी के काले बीजाणु बन जाते हैं जो मजबूत झिल्ली से ढके रहते हैं।

अनावृत कंडुआ रोग की पहचान

रोगी बालियों में दानों के साथ में काला चूर्ण बन जाता है। यह सफेद रंग की झिल्ली से ढका रहता है। बाद में एमिन झिल्ली फट जाती है और फफूंदी के असंख्य जीवाणु हवा में फैल जाते हैं।

रोकथाम

- प्रमाणित बीज बोयें
- यह रोग आन्तरिक बीज जनित है अत: दैहिक फफूंदी नाशक जैसे कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण या कर्बाक्सींन द्धक्र प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से शोधित करके बोना चाहिए ।

जौ की पत्ती धारीरोग की पहचान

इस रोग में नशों के बीच हरापन समाप्त होकर पीली धारियां बन जाती हैं जो बाद में गहरे रंग रंग में बदल जाती हैं जिससे फफूंदी के असंख्य बीजाणु बनते हैं ।

रोकथाम

- आवृत कंडुआ की भाँति बीज शोधन करें।
- बीमारी दिखने पर गेहूं के झुलसा की तरह फफूंदी नाशियों का छिड़काव करें ।

जौ के धब्बेदार रोग

पत्तियों पर अंडाकार भूरे रंग के धब्बे पड़ते हैं जो बाद में पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। कई धब्बे आपस में मिलकर धारियां बना लेते हैं। जालियावृत धब्बा रोग में धब्बे में जालियां प्रमुखता से दिखाई देती हैं।

रोकथाम

आवृत कंडुआ की भाँति बीज शोधन करें । खेत में रोग बढ़ने की सम्भावना होने पर गेहूँ में झुलसा रोग में प्रयोग किये जाने वाले रसायनों का छिड़काव करें ।

जौ का गेरुई एवं रतुआ

पहचान व रोकथाम गेहूँ की गेरुई की तरह करें।

कीट पहचान एवं रोकथाम

दीमक, गुजिया, व माहू कीट की पहचान एवं नियंत्रण कार्य जैसा गेहूँ की फसल में वार्णित है करें।

कटाई तथा भण्डारण

कटाई का कार्य सुबह या शाम के समय करें। बालियों के पक जाने पर फसल को तुरन्त काट लें और मड़ाई करके भण्डारण करें। भंडारण गेहूं की भांति किया जाता है ●

पलायनः सूने होते गांव-बंजर होती खेती

आधुनिक तकनीक से बढ़ायी जा सकती है पैदावार

खेती-किसानी और ग्रामीण विकास को समर्पित 'कृषि चौपाल' द्वारा कृषिक्षेत्र की दशा और दिशा पर राज्यवार विश्लेषण किया जा रहा है। मौजूदा दौर में खेती किसानी जहां एक ओर सरकारी नीतियों की उपेक्षा के कारण हाशिये पर जा रही है, वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक प्रकोपों और वैश्विक स्तर पर जलवायविक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण भी चुनौतियों का सामना कर रही है। खेती-किसानी से किसानों का भी मन मलिन होता जा रहा है। कृषि क्षेत्र की तमाम समस्याओं और इसकी वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये 'कृषि चौपाल' टीम द्वारा भारत के विभिन्न राज्यों का राज्यवार भ्रमण कर तथ्य और सत्य जुटाये जायेंगे। इसी क्रम में इस अंक में प्रस्तुत है, 'कृषि चौपाल' द्वारा सीमांत पर्वतीय राज्य उत्तराखंड के कृषिक्षेत्र के परिदृश्य का लेखा-जोखा।

मदन जलाल

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि कार्य से लोगों का मोहभंग होने लगा है, जिसके बहुत से कारण हैं। कई गांवों में पलायन के कारण सन्नाटा छा गया है। उत्तराखंड में नेपाल व चीन की अंतर्राष्ट्रीय सीमा से सटे सीमांत क्षेत्रों में गांवों का जनशून्य हो जाना राष्ट्र व राज्य के लिए सु रक्षा और सामरिक दृष्टि से शुभ संकेत नहीं हैं। सन्नाटे में रह रहे गांवों में फिर से बहार लौटाने तथा सामरिक सुरक्षा को मजबूती देने के लिए राज्य में दीर्घकालिक योजना बेहद जरूरी है। यदि केंद्र व राज्य सरकारें कृषि को बढ़ावा देने के लिए कोई सकारात्मक पहल करें तो वास्तव में यह भोर की सुखद हवा के झौंके की तरह धरातल पर उतर कर भूल सुधार का उदाहरण बन सकती है, और पलायन से निर्जन हो चुके यहां के गांवों में फिर से रौनक लौटन के साथ ही सीमांत क्षेत्रों की सुरक्षा भी बेहतर ढंग से संभव हो सकेगी।

राज्य में पलायन के मुख्य कारण बेमौसमी वर्षा, शिक्षा, रोजगार, यातायात, संचार, चिकित्सा व स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं से संबंधित योजनाओं में सटीक नियोजन की कमी रही, जिस कारण कृषि भूमि तेजी से समाप्त हो रही है, जो एक चिंता का विषय हैं क्योंकि राज्य के शहरी क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि पर अंधाधुंध आवासीय व व्यावसायिक मकान बन रहे हैं वहीं पहाड़ी क्षेत्रों में पलायन के लगातार जारी रहने से हजारों हेक्टेयर भूमि बंजर होकर जंगल में तब्दील हो रही है। जो आने वाले वर्षों के लिए एक चेतावनी के साथ राज्य के लिए बुरी खबर भी है पर्वतीय क्षेत्र में खेती करने वाले किसान जमीन की उर्वरा शक्ति की कमी के कारण हातोत्साहित हो रहे हैं तो वहीं जंगली जानवरों, सूअर और बंदरों द्वारा फसलों को बर्बाद कर देने की वजह से भी खेती से किसानों की दूरियां बढ़ने लगी हैं वहीं खेती में नई तकनीक की जानकारी के अभाव में भी पलायन बदस्तूर जारी है।

उत्तराखंड में प्रतिवर्ष औसतन 1,100 मिली मीटर वर्षा होती है। पेयजल व सिंचाई की समस्या से बेखबर सरकारी तंत्र वर्षा जल का

राज्य में समुचित उपयोग करने की ठोस प्रणाली अब तक विकसित नहीं कर पाया है, जब सरकारी स्तर पर बारिश के पानी को रिचार्ज करने की ईमानदारी से कोशिशें ही नहीं की गईं तो धरातल पर उसके सुखद नतीजे कैसे आते! राष्ट्रीय भूजल बोर्ड भी मानता है कि यदि राज्य में वर्षा के पानी का 20 से 30 प्रतिशत ही उपयोग कर लिया होता तो उत्तराखंड में सिंचाई व पेयजल संकट जैसी कोई स्थिति पैदा ही नहीं होती।

हिमाचल प्रदेश खेती व बागवानी से ही समृद्ध हुआ। वहां पहाड़ी कृषकों को वैज्ञानिक तरीके से खेती व बागवानी को सरल तरीके से करने के गुरू सिखाये गये। नयी तकनीकों का प्रचार-प्रसार किया गया, नगदी फसलों पर जोर दिया, जिसका भरपूर लाभ सरकारी सहायता से किसानों ने उठाया।

उत्तराखंड के मुख्य मंत्री हरीश रावत ने कृषि के क्षेत्र में नयी तकनीक के इस्तेमाल तथा चकबंदी के मुद्दे को गंभीरता से लिया है, और इस पर कार्य भी जोरों पर है जो निकट समय में ही दिखायी देगा, कृषि मंत्री हरक सिंह रावत का मानना है कि जब तक पहाड़ी किसानों को नई तकनीक और सरल तरीके से खेती करने के गुर नहीं सिखाये जाएंगे तो कृषि और किसान दोनों ही उपेक्षित होंगे।

उधर उत्तराखंड के अर्थ एवं सांख्यिकी विभाग के सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में फसल पैदावार भरपूर हो रही है। परंतु आधुनिक कृषि को बढ़ावा दिये बगैर राज्य के किसानों का भला होना नामुमकिन है। सरकार को ठोस कृषि नीति अपनाने के साथ ही कृषि की नई तकनीक का भी प्रचार-प्रसार गांव के अंतिम व्यक्ति तक पहुंचाना होगा, तभी किसानों के मुरझाये चेहरों पर रौनक लौट सकती है। ●

हिमाचल की तर्ज पर करना होगा बागवानी का विकास

हरीश रावत ने बतौर मुखिया राज्य की जरूरतों एवं जनभावनाओं के अनुरूप विकास को एक नई दिशा देने तथा अपनी सोच को धरातल पर उतारने की छटपटाहट दिखाई है। कई प्रोत्साहनपरक योजनाओं की शुरुआत भी उनके द्वारा की गयी है। इन सबके बावजूद बेरोजगारी, स्वास्थ्य तथा पलायन जैसी गंभीर समस्याओं का समाधान अभी दूर का सपना बना हुआ है।

■ **कृषि चौपाल**

उत्तराखंड को दुर्दशा से उबारने तथा यहां की आर्थिकी को पटरी पर लाने के लिए राज्य सरकार ने बागवानी के विकास को आधार बनाने का निर्णय लिया है। इसके लिए 'मिशन फॉर इन्टीग्रेटेड डैवलपमैंट आफ हार्टीकल्चर' के अंतर्गत 'हार्टीकल्चर मिशन फॉर नार्थ ईस्ट एण्ड हिमालयन स्टेट्स' योजना पूरे प्रदेश में शुरू की गयी है। हरीश रावत सरकार की अब तक की यह अति महत्वपूर्ण एवं महत्वाकांक्षी योजना मानी जा रही

है। योजना के अंतर्गत कुल पंद्रह घटक निर्धारित किये गये हैं। प्रत्येक घटक में लाभार्थियों के लिए 30 से 50 प्रतिशत तक की राज सहायता का प्राविधान किया गया है। लाभार्थियों को इतनी आकर्षक राज सहायता या फिर सब्सिडी देने के पीछे राज्य सरकार की मंशा अधिक से अधिक काश्तकारों, बागवानों तथा ग्रामीणों को इस महत्वाकांक्षी योजना का लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करना है।

'हार्टीकल्चर मिशन फॉर नार्थ ईस्ट एंड हिमालयन स्टेटस' योजना के अंतर्गत राज्य में शुरू की गयी कुल पंद्रह योजनाओं में प्रदेश के कितने लोग रूचि लेंगे और लाभ उठाने को आगे आ पायेंगे यह तो आगे पता चलेगा, परंतु इतना लगभग तय माना जा रहा है कि यदि इस महत्वाकांक्षी योजना को अमली जामा पहनाया जा सका तो, इससे पर्वतीय राज्य उत्तराखंड की तस्वीर बदल सकती है। अर्थात आर्थिक चक्र को काफी हद तक व्यवस्थित किया जा सकता है।

विकास की किसी भी कार्य योजना में स्थानीय जरूरतों, जन-भावनाओं तथा व्यावहारिक पक्ष को केंद्र में रखना नितान्त आवश्यक है। आम जनता के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दिये बगैर विकास की बातें पूर्णत: निरर्थक एवं भ्रामक हैं। दुर्भाग्य से राज्य गठन के इन पंद्रह वर्षों में यहां के जन-सरोकारों को बड़ी बेशर्मी से हाशिये पर धकेल दिया गया। बीते डेढ़ दशक में जिस तेजी से पहाड़ के ग्रामीण अंचलों में खेती-बाड़ी चौपट हुई है बागवानी बर्बाद हुई है, पशुपालन पूरी तरह लुप्त प्राय हो चला है, बेरोजगारी संक्रामक रोग की तरह फैली है तथा पर्वतीय गांवों से पलायन ने एक भगदड का रूप ले लिया है उसे देखते हुए इस प्रदेश की पिछली-सरकारों नीति नियंताओं तथा सरकारी तंत्र की मंशा, क्षमता व नीतियों को सवालों के घेरे में खड़ा किया है।

प्रदेश में आठवें मुख्यमंत्री के रूप में हरीश रावत यहां सत्तासीन हैं। चूंकि श्री रावत को शुरू से ही एक जमीनी नेता माना गया है। इसीलिए राज्य की बागडोर संभालते ही प्रदेशवासियों की अपेक्षाएं अचानक बढ़ गयीं जो कि स्वाभाविक भी थीं। बेशक हरीश रावत ने बतौर मुखिया राज्य की जरूरतों एवं जनभावनाओं के अनुरूप विकास को एक नई दिशा देने तथा अपनी सोच को धरातल पर उतारने की छटपटाहट दिखाई है। कई प्रोत्साहनपरक योजनाओं की शुरूआत भी उनके द्वारा की गयी है। इन सबके बावजूद बेरोजगारी, स्वास्थ्य तथा पलायन जैसी गंभीर समस्याओं का समाधान अभी दूर का सपना बना हुआ है।

राज्य में बागवानी को यदि विकास का आधार बना पाने में सफलता मिलती है, तो उत्तराखंड में बेरोजगारी तथा पलायन की गति पर अंकुश लगाया जा सकता है। दरअसल बागवानी के क्षेत्र में 'हार्टीकल्चर मिशन फॉर नार्थ ईस्ट एंड हिमालयन स्टेट्स' योजना के अंतर्गत उत्तराखंड में संचालित की गयी पंद्रह कार्य योजनाओं में 15 लाख रुपये से लेकर एक करोड़ या फिर इससे भी अधिक ऋण उपलब्ध कराने का प्राविधान है। सभी योजनाओं में 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक राज सहायता मिलेगी। सरकार के इस प्रयास से प्रदेश में स्वरोजगार को बढ़ावा मिलेगा और यही हरीश रावत सरकार की मंशा भी है। इस महत्वाकांक्षी योजना में-पौधशालाओं की स्थापना, सब्जी एवं मसाला बीज उत्पादन, नये उद्यानों की स्थापना, फल क्षेत्रफल का विस्तार, सब्जी उत्पादन क्षेत्र का विस्तार, मसाला उत्पादन एवं उद्योग का विस्तार, पुष्प उत्पादन क्षेत्र विस्तार, मशरूम उत्पादन, पुराने उद्यानों का जीर्णोद्धार प्रमुख से शामिल है। इनके अलावा जल प्रबंधन व्यवस्था के तहत ट्यूब स्थापना, तालाब निर्माण, सामुदायिक तालाब निर्माण, संरक्षित खेती व ग्रीन हाउस निर्माण, शेड नेट हाउस, प्लास्टिक टनल, प्लास्टिक मल्चिंग, एंटी हेल नैट, संरक्षित खेती के लिए रोपण पद्धति जैसी योजनाएं शुरू की गयी हैं।

जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए जैविक खेती योजना जैविक प्रभावीकरण, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट निर्माण, वर्मी वैड निर्माण, औधानिकी में यंत्रीकरण तथा तकनीकी प्रसार हेतु प्रशिक्षण व प्रदर्शन योजनाएं सम्मिलित की गयी हैं। मानव संसाधन के विकास को भी विशेष तरहीज दी गयी है। इसके तहत लाभार्थियों को प्रशिक्षण, भ्रमण तथा उत्पादन प्रबंधन के अलावा उत्पाद के उपरान्त फल प्रबंधन जैसी कौशल एवं तकनीकी क्षमता को बढ़ाने की योजना है।

वस्तुत: बागवानी विकास के लिए राज्य सरकार की इस योजना से जहां प्रदेश में रोजगार के अवसर पैदा होंगे, वहीं पर्यावरण संरक्षण में भी इसका प्रत्यक्ष लाभ दृष्टिगोचर होगा। इसी के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग जैसी वैश्विक समस्याओं को कम करने में मदद मिल सकेगी। ●

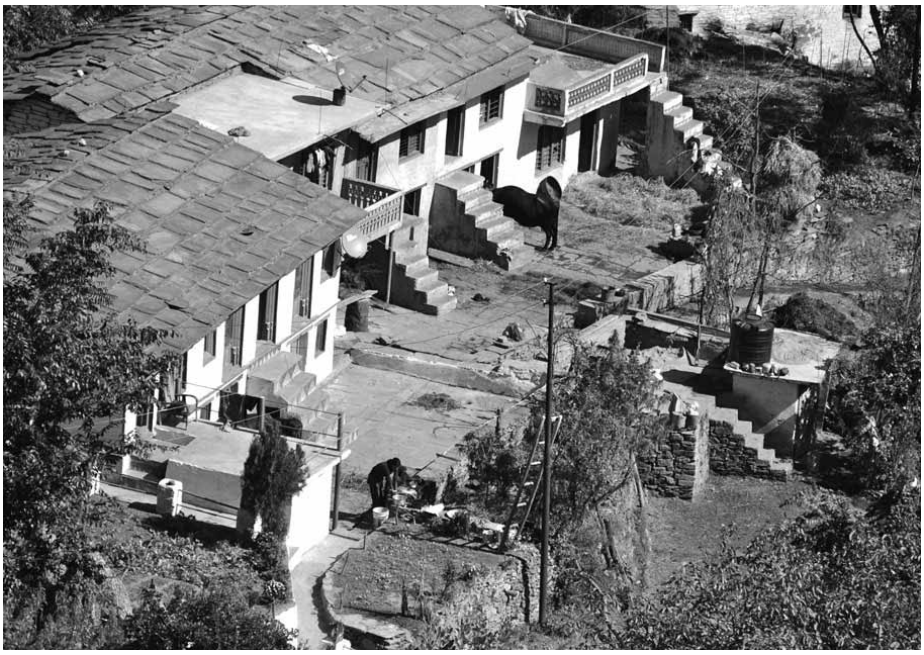

गांवों के विकास के लिए चाहिए दीर्घावधि योजनाएं

अधिकांश ग्रामीणों के पास 10 से 50 नाली भूमि ही उपलब्ध है। जिससे उद्यान विभाग द्वारा चलायी गई योजनाओं का लाभ ग्रामीण नहीं उठा पाते हैं। योजना का शत प्रतिशत लाभ पहुंचाने के लिए विभाग को राज सहायता प्राप्त योजनाओं को छोटी जोत के अनुसार मानक तय करने होंगे और ग्रामीणों में बागवानी को प्रोत्साहित करने हेतु कर्मचारियों व अधिकारियों को अधिक से अधिक जनसंपर्क व धरातली कार्य पर जोर देना होगा।

■ **कृषि चौपाल**

उत्तराखंड के पर्वतीय गांवों के लिये त्वरित एवं दीर्घागामी विकास योजनायें बनानी होंगी सबसे पहले यहां की बंजर होती खेती पर ध्यान देना होगा और खेती को नुकसान कर रहे वन्य जीवों से छुटकारा पाने की योजना बनानी होगी। खेती, पशुपालन, बागवानी, जल-जमीन से जुड़े उद्योग, धंधों पर काम करना होगा, युवाओं एवं गांववासियों का पलायन रोकने के लिये ठोस योजनाऐं बनानी होंगी। राज्य के अनुरूप बागवानी रोजगार का प्रमुख साधन बन सकती हैं। लेकिन नवीनतम तकनीकियों की पर्याप्त जानकारी के अभाव में इसका भरपूर लाभ लोगों को नहीं मिल पा रहा है। वहीं बिखरी खेती होने से कास्तकारों को सरकारी योजनाओं का फायदा भी नहीं पहुंच रहा है, विशेष ध्यान इस बात पर दिया जाय की राज्य हेतु योजनाएं विपणन को ध्यान में रखकर बनायी जानी चाहिए। जिससे कि औद्यानिकी के क्षेत्र में यह राज्य देश का अग्रणी राज्य बन सकें।

गांव-समाज के पास खेती के अलावा बंजर भूमि होती है। इसके उपयोग के उपाय खोजे जाने चाहिए, यद्यपि सरकारी तौर पर बंजर भूमि योजना चलायी भी जा रही है लेकिन उचित देख-रेख के अभाव में दम तोड़ रही हैं। साथ ही पहाड़ में सार्वजनिक व व्यक्तिगत भूमि है। जिसका फल पट्टी के रूप में विकास किया जा सकता हैं। उचित विपणन के अभाव में विगत वर्षो में किसानों ने सेब, नाशपाती, आडु, खुमानी के बगीचे काट डाले, प्रदेश का उद्यान विभाग निष्क्रिय पड़ा हुआ है। जिसे कठोरता से सक्रिय करना होगा।

औद्यानिकी को बढ़ावा देने के लिए रचनात्मक सोच के साथ कार्य कर सकारात्मक परिणाम लाने होगें। किसानों को नवीनतम तकनीकियों की प्रर्याप्त जानकारी नहीं होने से विकास के मार्ग एक प्रमुख बाधा है। कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से औद्यानिकी से संबंधित नवीनतम तकनीकियों को जन-जन तक पहुंचाने पर जोर देना होगा और सूचना प्रौद्योगिक के माध्यम से कृषकों के औद्योनिक उपजों की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी भी मिलनी चाहिये। तुड़ाई के उपरान्त सुविधाओं के अभाव में प्रतिवर्ष फलों को काफी क्षति पहुंचती है। जिसे कम करने हेतु कारगर योजना बनायी जानी चाहिए।

राज्य में प्रसंस्करण का वर्तमान स्वरूप अभी शैशव अवस्था में है। इसके विकास की प्रर्याप्त संभावना है। इस हेतु खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय ने 'राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड' का गठन किया है। वहीं प्रदेश के मुख्यमंत्री हरीश रावत बागवानी को बढ़ावा देने का निरंतर प्रयास कर किसानों को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

राज्य के पर्वतीय क्षेत्र के लोगों को बागवानी के क्षेत्र में चलायी जा रही सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिल पा रहा है। क्योंकि उद्यान विभाग ने जो मानक राज्य के योजनागत लाभार्थियों को राज सहायता प्रदान करने के बनायी है उससे अधिकांश लोग क्षुब्ध हैं। पहाड़ में खेती बिखरी हुई है। सीढ़ी नुमा खेत हैं। अधिकांश ग्रामीणों के पास 10 से 50 नाली भूमि ही उपलब्ध है। जिससे उद्यान विभाग द्वारा चलायी गई योजनाओं का लाभ ग्रामीण नहीं उठा पाते हैं। योजना का शत प्रतिशत लाभ पहुंचाने के लिए विभाग को राज सहायता प्राप्त योजनाओं को छोटी जोत के अनुसार मानक तय करने होंगे और ग्रामीणों में बागवानी को प्रोत्साहित करने हेतु कर्मचारियों व अधिकारियों को अधिक से अधिक जनसंपर्क व धरातली कार्य पर जोर देना होगा।

उद्यान विभाग द्वारा विभिन्न योजनाओं के तहत बागवानी को बढ़ावा देने के लिये 30 से 50 प्रतिशत तक राज सहायता प्रदान की जा रही है। सरकार ने पौधशाला स्थापना नये उद्यानों की स्थापना, फल क्षेत्र का विस्तार, पुराने उद्यानों का जीर्णोद्धार, जल प्रबंधन की व्यवस्था, तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन हेतु पैक हाउस का निर्माण, नई खाद्य प्रसंस्करण इकाई, विपणन की व्यवस्था करने सहित कई योजनाऐं चलायी हैं। जिससे राज सहायता प्रदान की जाती है।

यदि सरकार व उद्यान विभाग निष्क्रियता छोड़ सक्रियता से कार्य करने में जुट जायें तो वह दिन दूर नहीं होगा जब उत्तराखंड बागवानी के माध्यम से रोजगार प्रदान करने में देश का अग्राणी राज्य होगा। ●

मोहन चन्द्र पांडे

सेब उत्पादन का राष्ट्रीय परिदृश्य और उत्तराखंड

भारत का 95 प्रतिशत सेब उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में उत्पादित होता है, जिनमें जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर भारत में भी सेब का उत्पादन ठंडी जगहों पर होता है। अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, सिक्किम, मेघालय और दक्षिणी राज्य तमिलनाडु में भी वर्तमान में सेब के उत्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

फलों में सेब सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक पसंद किया जाने वाला फल है। यह भारत में शीतोष्ण जलवायु में उत्पन्न होता है। जोकि आम, केला, नींबू प्रजाति के फलों, पपीता, अमरूद तथा अंगूर के बाद देश में उत्पादन की दृष्टि से सातवें पायदान पर है। देश के कुल फलोत्पादन में सेब का योगदान वर्तमान में सिर्फ तीन फीसद ही है। भारत में सेब प्राचीन काल से ही पैदा होता रहा है, परंतु इसे बागवानी का स्वरूप 1855 में अंग्रेजों ने प्रदान किया। भारत में सर्वप्रथम उत्तराखण्ड के कुमाऊं मण्डल के जनपद नैनीताल और अल्मोड़ा में सेब की बागवानी की शुरूआत की गयी। इस क्षेत्र में सेब उत्पादन में सफलता मिलने के बाद इसके उत्पादन का रकबा बढ़ाया गया और इसकी पौध तैयार करने के लिये नर्सरियों की स्थापना की गयी। बागवानों में इसकी पौध की बढ़ती मांग की आपूर्ति करने के लिये सन् 1869 में एक उद्यान की स्थापना करने के बाद, तत्कालीन संयुक्त प्रांत प्रशासन (उत्तर प्रदेश) ने 1932 में पर्वतीय फल शोध केंद्र की स्थापना चौबटिया (रानीखेत, उत्तराखंड) में की। गौरतलब है कि चौबटिया गार्डन पर्वतीय फलों पर अनुसंधान करने वाला पहला केंद्र है।

भारत के शीतोष्ण जलवायु के स्थान मुख्यत: हिमाच्छादित हिमालयी पर्वत श्रृंखलाओं और ऊंचाई वाले क्षेत्रों के कारण हैं जो कि सर्दियों में मध्य दिसंबर से मध्य मार्च तक सेब के वृक्षों के लिये आवश्यक ठंड की आवश्यकता की पूर्ति कर देते हैं।

भारत का 95 प्रतिशत सेब उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में उत्पादित होता है, जिनमें जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर भारत में भी सेब का उत्पादन ठंडी जगहों पर होता है। अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, सिक्किम, मेघालय और दक्षिणी राज्य तमिलनाडु में भी वर्तमान में सेब के उत्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में देश के कुल 3.14 लाख हेक्टेयर में सेब के बगीचे हैं, जिनसे 8.08 मीट्रिक टन हेक्टेयर की दर से लगभग 25.42 लाख मीट्रिक टन सेब उत्पादित किया जा रहा है। देश के कुल सेब उत्पादन का लगभग 64 प्रतिशत सेब जम्मू और कश्मीर में पैदा होता है। जम्मू-कश्मीर में कुल 1.61 लाख हेक्टेयर में सेब के बागान हैं जबकि हिमाचल प्रदेश में कुल 1.08 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में देश की कुल उत्पादन क्षमता का लगभग 28 प्रतिशत सेब उत्पादित होता है।

उत्तराखंड में सेब उत्पादन और संभावनाएं वर्तमान में उत्तराखंड के 31,517 हेक्टेयर रकबे में सेब की पैदावार ली जा रही है। कुल 1.22 लाख मीट्रिक जन सेब उत्पादन के साथ उत्तराखंड तीसरे पायदान पर है। राज्य की भौगोलिक परिस्थितियां तथा जलवायविक स्थितियां सेब उत्पादन के

लिये काफी मुफीद मानी जाती हैं। परंतु जलवायु में असामान्य परिवर्तनों के चलते अच्छा उत्पादन लेने में राज्य के बागवानों को काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। मौसम संबंधी विपरीत परिस्थितियों जैसे- तापमान में अचानक उतार-चढ़ाव, असमय बरसात या कम बरसात, ओलावृष्टि, आवश्यक शीत आपूर्ति का अभाव, पुष्पन और फलों का अपर्याप्त विकास आदि कुछ इस प्रकार की समस्याएं हैं जिनसे सेब बागवानों को जूझना पड़ रहा है।

गौरतलब है कि सेब उत्पादन के लिये उस इलाके में तापमान का कम से कम निरंतर 300 घंटों तक जीरो डिग्री से नीचे बना रहना आवश्यक है, जिन इलाकों में सेब का उत्पादन होता है। इसी जलवायविक परिस्थिति को शीत आपूर्ति या आवश्यक शीत आपूर्ति कहा जाता है। उपरोक्त मौसम संबंधी चुनौतियों के कारण सेब उत्पादकों में आर्थिक असुरक्षा का भाव बना रहता है।

उत्तराखंड के सभी पर्वतीय जनपदों में सेब का उत्पादन होता है, परंतु उत्तरकाशी, नैनीताल, चमोली और अल्मोड़ा तथा देहरादून, चम्पावत और पिथौरागढ़ में सेब का उत्पादन प्रमुखता से हो रहा है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन के मामले में उत्तराखंड काफी पीछे है। जम्मू-कश्मीर की उत्पादकता और हिमाचल प्रदेश की उत्पादकता उत्तराखंड से कहीं ज्यादा है। उत्तराखंड वर्तमान में 3.88 मी.टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन के साथ तीसरे स्थान पर है। जाहिर है कि राज्य में सेब उत्पादन की अपार संभावनाऐं हैं परंतु इसके लिये सरकारी स्तर से प्रचार किये जाने की जरूरत है।

कमी के लिये जिम्मेदार कारक

उत्तराखंड में डेलिसियस प्रजाति के पुराने और अनुत्पादक बगीचों में उत्पादकता काफी कम होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण हिमरेखा में स्थानांतरण होने और सेबों के लिये जरूरी ठंडक का न होना भी उत्पादकता को प्रभावित करता है। अनेक इलाकों में सेब के बगीचे जहां कम उपजाऊ और ढलाऊ भूमि पर हैं वहीं सिंचाई सुविधाओं का भी अभाव है। उत्तराखंड के अधिकांश सेब के बगीचे उत्तर-पश्चिम दिशा में होने की बजाय दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित हैं साथ ही राज्य के अधिकांश बगीचों में उन्नत तथा उत्पादक प्रजातियों के सेबों के वृक्षों का भी अभाव है। सेब की परागणकर्त्ता प्रजातियां भी अपर्याप्त मात्रा में हैं जिससे परागणकर्त्ता प्रजातियों का अनुपात असंतुलित हो जाता है।

उत्तराखंड के बागवान अपने सेब के बगीचों में पारंपरिक तरीके से उत्पादन करते हैं। वृक्षों में छत्रक प्रबंधन का अभाव होता है। तथा सघन रोपण तकनीक का भी इस्तेमाल नहीं करते हैं। अनेक उद्यानों में कीट प्रबंधन पर भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बगीचों में स्कैब, जड़ों का सड़ना, कॉलर सड़न, चूर्णित आसिता, कैन्कर, क्राउन गॉल और अनेक विषाणुजनित रोगों का भी प्रकोप होता रहता है।

सरकार द्वारा किये गये प्रयास

राज्य का उद्यान विभाग उत्पादकता बढ़ाने के लिये अमेरिका, इटली और नीदरलैंड से विभिन्न प्रजातियों के सेब के पौधे आयात कर रहा है। यह पौधे स्पर प्रजातियों के क्लोनल रूट स्टॉक पर रोपित करके तैयार किये गये हैं। इनके अंतर्गत जिंजर गोल्ड-गाला, हनी क्रिस्प, रॉयल इम्पायर, गेल गाला, सिल्वर स्पर, सुपर चीफ, आर्गन स्पर, ब्रैवर्न, गिव्सन गोल्ड, टॉप रेड, ब्रैवर्न, अर्ली रेड वन, ग्रैनी स्मिथ, गोल्डन स्पर आदि प्रमुख यूरोपीय व अमेरिकी प्रजातियां शामिल हैं। उत्तराखंउ उद्यान विभाग द्वारा लगभग 10,600 क्लोनल मूल वृन्तों का भी आयात किया गया, जिन्हें अल्मोड़ा, चम्पावत, पिथौरागढ़, नैनीताल, टिहरी और उत्तरकाशी में स्थित 10 सरकारी उद्यानों व पौधालयों में रोपित किया गया है।

सेब सहित अन्य शीतोष्ण फलों के उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बागवानी के तहत् अपनायी जाने वाली समस्त तकनीकों को एकीकृत रूप से एक ही स्थान पर प्रदर्शित करने हेतु बागवानी अभियान के अंतर्गत उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्व विद्यालय के कासाताल स्थित केंद्र में 4 करोड़ 98 लाख रुपये की लागत से 'सेंटर ऑफ एक्सीलेंस' की स्थापना की जा रही है। इस केंद्र में फलों की तुड़ाई के बाद उनके प्रबंधन, प्रसंस्करण आदि से संबंधित तकनीकों का प्रदर्शन और प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा। बागवानों की जरूरतों के अनुसार अच्छी गुणवत्ता वाली पौध उपलब्ध कराने के लिये विभागीय पौधालयों को सुधारने और नये पौधालयों की स्थापना के लिये निजी क्षेत्रों को सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है। राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों की ऊंचाई के अनुसार उपयुक्त प्रजातियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। समुद्र सतह से 5,500 से 6,500 फीट ऊंचाई पर स्थित इलाकों के लिये सुपर चीफ, आर्गन स्पर, वैल स्पर, स्कारलेट गाला, फैनी, रेड चीफ, वैंस डेलिसियस, रिच ए रेड, स्टार क्रिमसन, रेड फ्यूजी, मौलीज डेलिसियस, टॉप रेड, रॉयल डेलिसियस, चौबटिया अनुपम, चौबटिया प्रिंसेज, टॉप रेड, आदि प्रजातियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके साथ ही परागणकर्त्ता प्रजातियों टाइडमैन अर्ली वर्सेस्टर, रेड गोल्ड, गोल्डन स्पर, समर क्वीन, गोल्डन डेलिसियस आदि के रोपण के लिये बागवानों को पौध उपलब्ध करायी जा रही हैं।

सेब के उत्पादन को संवर्धित करने के लिये सुझाये गये मूलवृन्तों का प्रयोग करना बहुत जरूरी है, जिनमें ईएमएल-7, एम-7, ईएमएल-106, ईएमएल-26 आदि सेमी ड्वार्फ प्रमुख मूलवृंत्त हैं। मध्य विगरस मूलवृंन्तों में एम-793 खास है।

उत्तराखंड में सेब के भण्डारण की सुविधाओं का भी अभाव है। नींबू वर्गीय फलों के अलावा सेब ही ऐसा फल है जो, उत्तराखंड में बहुतायत में उत्पादित होता है। इसका भण्डारण नहीं हो पाने की वजह से काफी फल बर्बाद हो जाता है। जबकि हिमाचल और जम्मू-कश्मीर में भण्डारण की अच्छी सुविधाऐं हैं। अनेक बस अड्डों और रेलवे स्टेशनों पर हिमाचल में उत्पादित सेब के जूस के काडंटर स्थापित किये गये हैं।

उत्तराखंड सरकार द्वारा यदि सेब के बागवानों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तो इसमें किंचित मात्र भी शक-शुबहा नहीं है कि उत्तराखंड सेब उत्पादन में राष्ट्र को काफी कम समय में ज्यादा योगदान देने लायक बन जायेगा। ●

बिखरी पड़ी जनपक्षधर ताकतों को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा

सिक्स्थ वाल ईवेंट मैनेजमेंट कंपनी के सीईओ सुधीर रावत ने 'कृषि चौपाल' के संवाददाता पी. एस. चौहान से एक मुलाकात के दौरान उत्तराखंड की कृषि व्यवस्था और पलायन को लेकर अपने विचार साझा किये। सुधीर रावत ने उत्तराखंड राज्य प्राप्ति आंदोलन में भी सक्रिय भूमिका निभायी। वर्तमान में वह 'फाउंडेशन फॉर एनवायरन्मेंटल एंड सोशियो इकोलॉजिकल रीकंस्ट्रक्शन' संस्थान के माध्यम से समाज सेवा में भी अपना योगदान दे रहे हैं।

● उत्तराखंड से बढ़ रहे पलायन को आप किस रूप में लेते हैं?

हमने सोचा था कि जब उत्तराखंड राज्य गठित होगा तो पलायन में कमी आयेगी। परंतु राज्य गठन के लगभग डेढ़ दशक बाद भी पलायन में कोई कमी नहीं आयी है। हालिया जारी सामाजार्थिक आंकड़े इसके गवाह हैं। राज्य गठन के बाद पलायन का स्वरूप भी बदल गया है। राज्यगठन के पूर्व जब उत्तराखंडवासी पलायन करते थे तब वह आजीविका की तलाश में मैदानी शहरों की ओर हुआ करता था, परंतु अब उत्तराखंड के गांवों के लोग बेहतर जीवनशैली की तलाश में राज्य के ही तराई इलाके में स्थित शहरों और कस्बों की ओर पलायन कर रहे हैं।

● उत्तराखंड राज्य की कृषि एवं अर्थव्यवस्था पर पलायन का प्रभाव पड़ा है, क्या आप इससे सहमत हैं?

उत्तराखंड में कृषि और पशुपालन एक दूसरे के पूरक रहे हैं। पलायन के कारण इन दोनों व्यवसायों पर असर पड़ा है। मुझे हाल ही में विभिन्न सूचना माध्यमों से यह भी पता चला है कि उत्तराखंउ के 3000 राजस्व गांव वीरान हो चुके हैं। मैं दिल्ली में व्यवसाय करते हुए भी सदा अपनी मातृभूमि से जुड़ा रहा हूं। अल्मोड़ा से सटे हुए चमोली जनपद की दशौली पट्टी के चटिंग्याला गांव में मेरा जन्म हुआ। आज भी मैं अपने गांव प्राय: जाता रहता हूं। इस दौरान मैंने नोट किया कि गांवों के बहुत से घरों में ताले पड़ चुके हैं तथा जमीनें बंजर हो चुकी हैं। वीरान पड़ चुके गांव और बंजर हो चुके खेत सरकारी दावों की पोल खोल रहे हैं।

● पहाड़ों की इस दुर्दशा के लिये आप किसे जिम्मेदार मानेंगे?

देखिये! किसी भी क्षेत्र की प्रगति या पिछड़ेपन के लिये सरकार ही जिम्मेदार होती है। सरकार इस इल्जाम से बच नहीं सकती है कि उसने पहाड़ की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार योजनाऐं तैयार नहीं की। जाहिर है कि जो योजनाऐं मैदानी भागों को ध्यान में रखकर बनायी गयीं उनके परिणाम पहाड़ों पर अच्छे नहीं निकले। साथ ही पहाड़ों में योजनाओं को कुछ इस प्रकार लागू किया गया कि उनका लाभ उस वर्ग तक पहुंचा ही नहीं, जिस वर्ग के लिये योजना बनायी गयी थी।

● राज्य की दशा-दिशा को सुधारने के लिये आप किस तरह का शासन-प्रशासन मुफीद समझते हैं?

दरअसल जब राज्य गठित किया गया था तब इसे केंद्रशासित प्रदेश की तरह गठित किया जाना उचित होता, ताकि शुरू के 10-15 सालों में विकास का एक भावी ढांचा तैयार हो पाता। परंतु वह समय तो अब हाथ से निकल चुका है, इसलिये अब हम जहां हैं वहीं से शुरूआत करनी होगी। राज्य की भौगोलिक परिस्थितियों के मद्देनजर योजनाऐं तैयार की जानी चाहिये। राज्य का शैक्षणिक माहौल सुधारने की आवश्यकता है। शिक्षा का आंकलन उपाधियों से नहीं बल्कि गुणवत्ता से किया जाना चाहिये। हिमालय क्षेत्र की संपदाओं का संदोहन और संरक्षण दोनों ही योजनागत स्वरूप का होना चाहिये।

● राज्य की कृषि व्यवस्था को सुधारने के लिये आप क्या राय रखते हैं?

उत्तराखंड में वर्तमान में कृषि वानिकी से शुरूआत की जानी चाहिये। यह कृषि की नयी अवधारणा है, परंतु जंगली जानवरों और सूअरों तथा उत्पाती बंदरों ने उत्तराखंड की कृषि व्यवस्था को जो नुकसान पहुंचाया है, उसके मद्देनजर कृषि वानिकी से शुरूआत की जानी चाहिये। और धीरे-धीरे कृषि को नुकसान पहुंचाने वाले जानवरों को नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ना चाहिये। उत्तरारखंड जौविक कृषि के लिहाज से सर्वाधिक मुफीद सूबा है। कोशिश यह भी होनी चाहिये कि यहां कीटनाशकों और संकर बीजों का कम से कम इस्तेमाल किया जाना चाहिये। उत्तराखंड में स्वाभाविक तौर पर पैदा होने वाली सब्जियों, जड़ी-बूटियों की व्यावसायिक खेती का उत्पादन किया जाना चाहिये। उत्तराखंड में पैदा होने वाले खाद्यान्नों- मडुवा, झुंगरा, जौ, ज्वार-बाजारा, गहत, भट, उड़द, बांकुल, रैंस (बींस), राजमा, गेहूं आदि की जैविक खेती पर जोर दिया जाना चाहिये।

● राज्य की मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था के बारे में आपके क्या ख्याल हैं?

जिन ताकतों ने राज्य गठन के लिये आंदोलन के दौरान संघर्ष किया वह लगातार हाशिये पर जा रही हैं जो कि राज्य के भविष्य के लिये शुभ संकेत नहीं है। राज्य में बिखरी पड़ी जनपक्षधर ताकतों को एकजुट होकर संघर्ष करना चाहिये। लोकतंत्र में केवल सत्ता प्राप्ति से ही सब कुछ संभव नहीं होता है बल्कि संघर्ष से भी काफी कुछ हासिल किया जा सकता है। ●

ग्रामीण कॉरपोरेट तर्ज पर आबाद होंगे बंजर खेत

आखिरकार जब 68 प्रतिशत खेती पर निर्भरता वाले पहाड़ी जिलों में खेती का कुल आय में योगदान 30 प्रतिशत से घटकर 12.1 प्रतिशत पहुंच गया, तब जाकर सरकार की आंख खुली। राज्य में पहली बार बने नीति नियोजन ग्रुप के सदस्य व राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान के पूर्व निदेशक प्रो. बीपी मैठाणी की ओर से तैयार ड्राफ्ट को सरकार और बुद्धिजीवियों ने स्वीकार कर लिया है। इसके अंतर्गत एक जोत-एक किसान का फार्मूला लागू करते हुए पहाड़ के गांवों में ग्रामीण कॉरपोरेट तर्ज पर खेती करेंगे। पांच साल तक सरकार हर गांव में माइक्रो इंटरप्राइजेज ग्रुपों को आर्थिक व अन्य सहूलियतें देगी, इसके बाद ग्रामीण खुद ग्रुप खेती का संचालन करेगा। पहाड़ में बिखरी जोत, खेतिहर जमीन कम होने, असिंचित भूमि, जंगली जानवरों के आतंक व जीतोड़ मेहनत के बाद आधा भी नहीं मिलने से लोगों ने खेती से तौबा कर ली है। सड़क से सटी जमीन बिल्डर खरीद रहे हैं।

मुख्य राजस्व आयुक्त की रिपोर्ट के अनुसार पहाड़ में कुल 51 लाख 42 हजार 725 हेक्टेयर भूमि में से नौ प्रतिशत अर्थात चार लाख, 62 हजार 927 हेक्टेयर में खेती सिमट गई है। जबकि मैदानी जिलों में पांच लाख 25 हजार हेक्टेयर में से दो लाख 60 हजार हेक्टेअर से अधिक में खेती हो रही है। पलायन से 1065 गांव पूरी तरह गैर आबाद श्रेणी में आ गए तो दो लाख 57 हजार घर वीरान पड़े हैं। पड़ोसी हिमाचल प्रदेश में खेती से सालाना आय 8,777 प्रति व्यक्ति तो उत्तराखंड में 4,701 पहुंच गई है।

प्रो. मैठाणी की ओर से तैयार ड्राफ्ट के अनुसार हर गांव की सोसाइटी बनाकर नाप-बेनाम, वन पंचायत व संजात भूमि पर खेती की जाएगी। गांव के ही खेती के प्रति लगनशील को प्रबंधक बनाया जाएगा। जनरल बॉडी व एक्जीक्यूटिव बॉडी बनाई जाएगी। उसे पांच साल तक वेतन सरकार देगी। बंजर भूमि को आबाद करने के लिए मनरेगा, हॉर्टीकल्चर टेक्नोलॉजी मिशन, लघु सिंचाई व अन्य योजनाओं से बजट मुहैया कराया जाएगा। गांव में रह रहे अथवा पलायन कर गए ग्रामीण माइक्रो इंटरप्राइजेज ग्रुप के सदस्य होंगे। एक नाली भूमि पर एक शेयर धारक होगा। सभी ग्रामीण कंपनी के हिस्सा होंगे। गांव में खेती संचालन के लिए एक कार्यालय भी स्थापित किया जाएगा।

सामाजिक विकास का मोर्चा संभालेंगे गैर सरकारी संगठन

हंस फाउंडेशन की ओर से प्रदेश के सामाजिक क्षेत्र में 500 करोड़ रुपये के निवेश की राह बन गई है। हंस फाउंडेशन और प्रदेश सरकार के बीच इस धनराशि से कई योजनाओं को धरातल पर उतारने के लिए करार हुआ है। हंस फाउंडेशन सरकार के साथ प्रदेश में स्वास्थ्य, कृषि, शिक्षा, वन, जल, सफाई, विकलांग कल्याण से जुड़े विकास कार्यक्रमों पर काम करेगा। समझौते पर हस्ताक्षर के लिए हुए कार्यक्रम के तहत आयोजित कार्यशाला में सरकार और गैर सरकारी संगठनों के बीच समन्वय पर बातचीत हुई।

न्यू कैंट रोड स्थित मुख्यमंत्री आवास में हुए कार्यक्रम में मुख्यमंत्री हरीश रावत ने कहा कि हंस फाउंडेशन का सहयोग मिलने से अन्य गैर सरकारी संगठनों और सरकार के बीच भी सामंजस्य बढ़ेगा। मुख्यमंत्री ने कहा कि उत्तराखंड में एनजीओ की महत्वपूर्ण भूमिका है। एनजीओ प्रदेश के विकास में उत्प्रेरक का काम करते हैं। द हंस फाउंडेशन की चेयर पर्सन श्वेता रावत ने बताया कि हंस फाउंडेशन ने विशेष रूप से 2013 की आपदा के बाद उत्तराखंड में 500 करोड़ रुपये का निवेश समावेशी सामाजिक विकास में करने का निर्णय लिया है। राज्य सरकार की ओर से अपर मुख्य सचिव एस राजू और द हंस फाउंडेशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी एसएन मेहता ने एमओयू पर हस्ताक्षर किए।

हंस फाउंडेशन के विजन 2020 के तहत शुरू हुए इन कार्यक्रमों में बहुत से अन्य गैर सरकारी संगठनों के साथ आने की उम्मीद है। इनमें मैक्स इंडिया फाउंडेशन, प्लान इंटरनेशनल, अमेरिकन इंडिया फाउंडेशन, इंटरनेशनल सेंटर फॉर इंटिग्रेटेड डेवलपमेंट, हिम्मथॉन, अजीज प्रेमजी फाउंडेशन जैसे संगठन शामिल हैं। कार्यक्रम में भोले महाराज, उनकी पत्नी मंगला रावत, फिल्म निर्देशक गोविंद निहलानी, राकेश शर्मा आदि भी मौजूद थे।

रज्जू मार्गों की बदहाली से सरकार अनजान

पहाड़ की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जानी वाली खेती किसानी के विकास के दावों में कितना दम है यह एक दशक पूर्व यहां स्थापित रज्जू मार्गों की हालत को देखकर लगाया जा सकता है।

देखरेख के अभाव में तहसील क्षेत्र में स्थापित पांचों रोप-वे अब पूरी तरह से बंद हो चुके हैं। इन रज्जू मार्गों के माध्यम से किसानों को सब्जी आदि उत्पाद हल्द्वानी मंडी पहुंचाने में काफी सहूलियत होती थी और उत्पादन के सही दाम भी मिल जाते थे। अब यह सुविधा बंद होने से किसानों के सम्मुख उत्पादों को समय पर बाजार उपलब्ध कराने की चुनौती खड़ी हो गई है।

रानीखेत तहसील में 2003-04 में बोहरागांव से भुजान दो किमी, मलौना से पातली दो किमी, स्यूं से पातली ढाई किमी, सुकोली से रीची बिल्लेख डेढ़ किमी, कोट ख्यूशाल से पातली एक किमी के रज्जू मार्ग बनाए गए थे। इन रज्जू मार्गों का निर्माण चिया संस्था ने किया था।

ये सभी गांव सड़क से दो से चार किमी की खड़ी चढ़ाई पर स्थित हैं। इन गांवों में फूल गोभी, बंद गोभी, आलू, टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, मटर, बींस सहित तमाम सब्जियों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता है।

रोप-वे बनने के बाद ग्रामीण सब्जियों को रोप-वे के माध्यम से मुख्य सड़क तक पहुंचाते थे, वहां खड़ा व्यक्ति सब्जियों को उतारकर वाहन में रखकर हल्द्वानी मंडी ले जाता था। इसमें समय की बचत हो जाती थी।

ग्रामीण बाजार से लाए गए भारी-भरकर सामान को भी रोपवे ट्राली के माध्यम से गांव तक पहुंचा देते थे, लेकिन 2006-07 में देखरेख के अभाव में यह रज्जू मार्ग खराब होने लगे थे।

2007-08 में सभी रोप-वे पूर्ण रूप से बंद

हो चुके थे। कई स्थानों पर जहां से रोप-वे स्थापित किए गए थे वह क्षेत्र पूरी तरह से झाड़ियों से ढंक चुके हैं, लेकिन सरकार के नुमाइंदों की नजरें इस अव्यवस्था पर नहीं पड़ रही हैं। अब फिर से प्रदेश सरकार रोप-वे स्थापित करने की बातें कर रही है। यदि पुराने रोप-वे ठीक कर दिए जाएं तो किसानों को कफी लाभ मिलेगा।

पलायन रोकने के लिए खेती को बढ़ावा देने की कवायद

कुमाऊं के पर्वतीय क्षेत्र में खेती को बढ़ावा देने के लिए पंतनगर कृषि विवि और विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (वीपीकेएएस) अल्मोड़ा मिलकर काम करेंगे। अधिक लोगों को खेती से जोड़कर रोजगार के अवसर पैदा करने के प्रयास किए जाएंगे ताकि पलायन पर भी रोक लग सके। पंतनगर विवि के कुलपति डॉ. मंगलाराय और वीपीकेएएस के निदेशक डॉ. अरुणव पटनायक ने यह जानकारी दी।

अल्मोड़ा (उत्तराखंड) स्थित वीपीकेएएस सभागार में पहुंचे पंतनगर कृषि विवि के कुलपति डॉ. राय ने पत्रकारों को बताया कि पर्वतीय क्षेत्र में कृषि विकास की अनेक संभावनाएं हैं। कुलपति ने बताया कि यहां किस तरह की खेती को बढ़ावा दिया जाए और इसके लिए क्या खास करने की जरूरत है इसके अध्ययन के लिए उन्होंने पिछले तीन चार दिनों में लोहाघाट, चंपावत, पिथौरागढ़, बागेश्वर, ग्वालदम, अल्मोड़ा क्षेत्र का भ्रमण किया। उन्होंने बताया कि पंतनगर विवि, वीपीकेएएस संयुक्त रूप से काम करके किसानों को उन्नत बीज उपलब्ध कराने से लेकर प्रशिक्षण, विपणन आदि क्षेत्रों में भी मदद देंगे। डॉ. राय ने कहा कि वीपीकेएएस ने बीजों की कई महत्वपूर्ण प्रजातियां खोजी हैं। साथ ही पर्वतीय कृषि को बढ़ावा देने के लिए कई अन्य अनुसंधान किए हैं। पहाड़ के अनुरूप उपकरण भी बनाए हैं। दूसरी ओर पंतनगर विवि भी तकनीकी हस्तांतरण समेत ट्रेनिंग सहित किसानों में दक्षता बढ़ाने के लिए पूरी मदद करने को तैयार है। डॉ. राय ने कहा कि पर्वतीय क्षेत्र में सब्जी, फल उत्पादन, मशरूम, फूलों की खेती, मत्स्य पालन, पशुपालन आदि क्षेत्रों में काम करने की काफी संभावनाएं हैं। दोनों संस्थान मिलकर किसानों को उचित मार्ग निर्देशन देंगे। खेती को बढ़ावा मिलने से रोजगार के अवसर पैदा होंगे और पहाड़ से पलायन रुक सकेगा। उन्होंने यह भी कहा कि इस दिशा में सिर्फ सरकारी मदद से ही काम नहीं बनने वाला है। किसानों को भी आगे बढ़कर काम करना पड़ेगा। इस मौके पर जाने-माने कृषि विशेषज्ञ डॉ. आरके गुप्ता, डॉ. वाईपीएस डबास, डॉ. वीर सिंह आदि मौजूद थे।

वन्यजीव संरक्षण कानून की हो समीक्षा

पंतनगर कृषि विवि के कुलपति डॉ. मंगला राय ने कहा कि पहाड़ में जंगली जानवरों से फसल को बचाने के लिए वन्यजीव संरक्षण अधिनियम पर पुनर्विचार करना पड़ेगा। संवाददात सम्मेलन के दौरान पत्रकारों द्वारा जंगली जानवरों के आतंक से किसानों द्वारा खेती छोड़ने तथा इसके विकल्प के बारे में पूछे गए सवाल के जवाब में डॉ. राय ने यह बात कही। उन्होंने कहा कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम लागू होने से पहले ऐसी स्थिति नहीं थी। उन्होंने कहा जानवरों को बचाने के साथ ही खेती को बचाना भी जरूरी है। उन्होंने कहा कि 1970 में करीब 140 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में खेती होती थी। 2015 में भी लगभग इतने ही क्षेत्र में खेती हो रही है। आबादी तीन गुना बढ़ गई है लेकिन जोत क्षेत्र बिल्कुल नहीं बढ़ा है, हालांकि कृषि की उन्नत तकनीक के जरिये उत्पादन बढ़ा है।

कार्यदायी संस्थाएं दबाये बैठी हैं करोड़ों रुपये

विधायक निधि से होने वाले विकास कार्यों मसलन बिजली, पानी, सड़क जैसी बुनियादी सुविधाओं को लेकर आम आदमी पर दोहरी मार पड़ रही है। जहां ज्यादातर जनप्रतिनिधियों ने विधायक निधि से होने वाले विकास कार्यों का प्रस्ताव ही तैयार नहीं किया और 150 करोड़ से अधिक पैसा खाते में पड़ा हुआ है, वहीं रही-सही कसर कार्यदायी संस्थाओं ने पूरी कर दी है। ग्राम्य विकास विभाग के आंकड़े बताते हैं कि चालू वित्तीय वर्ष में कार्यदायी संस्थाओं को 40.52 करोड़ रुपये निर्माण कार्यों के लिए जारी किए गए, इनमें से संस्थाएं महज 18.93 करोड़ की लागत से ही विकास कार्य करा पाई।

आंकड़ों पर नजर डालें तो सरकार की ओर से विधायक निधि में 141 करोड़ का बजट जारी किया गया। विधायकों की ओर से 64 करोड़ की लागत वाले 4659 छोटे-बड़े निर्माण कार्यों की संस्तुति की। जबकि डीआरडीए द्वारा तकनीकी परीक्षण कराने के उपरांत 4513 प्रस्तावों को मंजूरी देते हुए 40 करोड़ 52 लाख का बजट कार्यदायी संस्थाओं को आवंटित किया गया। लेकिन जनप्रतिनिधियों व सरकारी अधिकारियों द्वारा निर्माण कार्यों की मॉनीटरिंग न होने से कार्यदायी संस्थाएं बेहद धीमी गति से निर्माण कार्य करा रही हैं। नौ माह बीत जाने के बावजूद कार्यदायी संस्थाएं महज 18.93 करोड़ की लागत से ही निर्माण कार्य करा पाई हैं।

विधायक निधि व डीआरडीए से आवंटित बजट का इस्तेमाल करने में चंपावत, अल्मोड़ा, नैनीताल, ऊधमसिंहनगर की कार्यदायी संस्थाएं फिसड्डी साबित हुई हैं। आंकड़ों के मुताबिक नैनीताल में 6.17 में से महज एक करोड़, ऊधमसिंह नगर में 8.43 में से 2.50 करोड़, पौड़ी में 4.51 में से 1.57 करोड़ और हरिद्वार में 4.51 में से सिर्फ एक करोड़ की धनराशि खर्च की जा सकी है। अल्मोड़ा सूबे का ऐसा जिला है जहां कार्यदायी संस्थाओं ने एक भी रुपया विकास कार्य में खर्च नही किया है। जबकि उत्तरकाशी एकमात्र जिला है जहां कार्यदायी संस्थाओं ने डीआरडीए की ओर से आवंटित बजट का पूरा इस्तेमाल करते हुए विकास कार्य कराए हैं।

20 करोड़ की लिफ्ट, पेयजल योजनाएं रोकीं

केंद्र सरकार की फंडिंग रुकने से परेशान प्रदेश शासन ने 20 करोड़ से अधिक बजट की स्वीकृत पर्वतीय लिफ्ट परियोजनाओं को तत्काल प्रभाव से रोक दिया है। ये परियोजनाएं स्वीकृत तो हो गई हैं, लेकिन काम शुरू नहीं हुआ है। साथ ही शासन ने पेयजल निगम को फटकार लगाई है कि नेताओं के दबाव में आकर बिना आकलन प्रस्ताव न दें। शासन के वित्तीय संसाधनों की स्थिति के मद्देनजर पेयजल के पारंपरिक तरीकों को प्रोत्साहित किया जाए। इस वक्त जो लिफ्ट पेयजल परियोजनाएं चल रही हैं उनका सालाना करोड़ों रुपये बिजली का बिल आ रहा है और इनसे आमदनी नगण्य है।

शासन को पता चला है कि पेयजल निगम ने राजनीतिक दबाव में आकर ऐसे स्थानों पर लिफ्ट

पेयजल योजनाओं का प्रस्ताव पास कर दिया जहां सिर्फ एक-दो परिवार ही लाभान्वित हो रहे हैं। ऐसे में यहां बिजली का बिल तो हजारों में आता है लेकिन इनसे आमदनी लगभग शून्य रहती है। पेयजल विभाग को इस वक्त सालाना करोड़ों रुपये बिजली का बिल देना पड़ रहा है। इसमें जल संस्थान का ही 90 करोड़ का सालाना बिल आता है। शासनादेश में कहा गया है कि पेयजल निगम अन्य विकल्पों पर विचार करने के बजाय लोगों की मांग पर लिफ्ट योजनाओं के प्रस्ताव उपलब्ध कराता है, जो गलत है।

लिफ्ट पेयजल योजना में आइंदा कोई घपला न हो इसके लिए शासन ने समिति का गठन कर दिया है। यह समिति ही अब प्रस्ताव पर अपनी अंतिम रिपोर्ट और प्रमाणपत्र देगी कि लिफ्ट योजना के अलावा कोई विकल्प नहीं है। तभी शासन योजना को हरी झंडी देगा। अपर मुख्य सचिव एस राजू के आदेश में यह बात स्पष्ट कर दी गई है। समिति में संबंधित जिले के डीएम को अध्यक्ष और संबंधित अधीक्षण अभियंता पेयजल निगम और जलसंस्थान को सदस्य बनाया गया है। शासनादेश में यह भी कहा गया है कि वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता को देखते हुए अपवाद छोड़कर लिफ्ट पेयजल योजनाओं को हतोत्साहित किया जाए।

चक्कर काटने पर भी नहीं भुनाया जा सका चेक

शासन से किसानों को सूखा राहत का मुआवजा पहले मिल नहीं रहा, कई बार चक्कर काटने के बाद मुआवजे का चेक मिल भी गया तो डाकघर और बैंक उसका भुगतान करने में आनाकानी कर रहे हैं। जिसके चलते किसानों के समय और धन की बर्बादी हो रही है।

भूलगांव के एक किसान को तहसील से सूखा राहत का 1500 रुपये का चेक मिला। इस चेक के भुगतान के लिए उसने डाकघर और एसबीआई के कई चक्कर काटे लेकिन भुगतान नहीं हुआ। चेक की वैधता तीन माह होती है। इसलिए कांडा तहसील जाने पर भी चेक नहीं बदला जा सका। किसान भूपाल सिंह राठौर ने बताया कि उसे 21 मई को कांडा तहसील से सूखा राहत का 1500 रुपये का चेक मिला। इसे लेकर वह गांव के डाकघर गए, तो वहां उनके हस्ताक्षर न मिलने की जानकारी दी गई।

इसके बाद वह एसबीआई की शाखा गए, वहां चेक के पीछे अंग्रेजी में हस्ताक्षर होने की बात कहकर उन्हें लौटा दिया। इसके बाद वह कांडा तहसील गए तो उन्हें यह कहकर वापस कर दिया कि यह तो पूर्व तहसीलदार के हस्ताक्षरों से जारी हुआ है। इस पर अब कुछ नहीं किया जा सकता है। राठौर ने कहा कि एक तरफ किसान फसल बर्बाद होने से परेशान हैं, दूसरी ओर बीज की क्षतिपूर्ति के लिए थोड़े मुआवजे का चेक मिला तो उसका भुगतान नहीं मिल रहा है।

बंदर-लंगूरों की भी गिनती की जाएगी

अभी तक बाघ, हाथी की मुख्य रूप से गणना होती थी। पर अब पहली बार बंदर-लंगूर भी गिने जाएंगे। इसके अलावा, 2005 के बाद पहाड़ों में लेपर्ड की गिनती होगी। इतना ही नहीं 'जंगल का राजा' टाइगर पहाड़ में कहां तक पहुंच गया है, इसका ब्योरा भी एकत्र किया जाएगा। इस काम की तैयारी हो चुकी है और अधिकारियों की जिम्मेदारी भी तय कर दी गई है। पहाड़ में खासकर बंदर की फौज मुसीबत बन गई है। वह फसलों को चौपट कर रहे हैं, पर किस इलाके में कितने बंदर हैं? इनकी संख्या कितनी रफ्तार से बढ़ रही है? कहां पर ज्यादा प्रभाव है? इसका कोई भी विधिवत आंकड़ा या सूचना वन महकमे के पास नहीं है। केवल एक अनुमान है। ऐसे में वन विभाग ने समस्या के हल के लिए बंदर और लंगूरों की गिनती करने का फैसला किया है। वन संरक्षक पश्चिम वृत्त सुरेंद्र मेहरा कहते हैं कि यह गणना पहली बार होगी। इसके आधार पर बंदरों से निपटने की योजना आदि को तैयार किया जाएगा।

इसके अलावा पहाड़ों में तेंदुए भी समस्या बने हुए हैं जो पशुओं को मारने के साथ इंसानों के लिए भी खतरा बने हैं। आखिरकार तेंदुए आबादी वाले इलाकों में क्यों इतना हमला कर रहे हैं? उनके वासस्थल की स्थिति कैसी है? जंगल में तेंदुओं के भोजन की स्थिति क्या है? इसका भी अध्ययन किया जाएगा। 2005 के बाद तेंदुओं की गणना समेत इन बिंदुओं पर भी अध्ययन होगा। इसके अलावा तराई के जंगलों में राज करने वाले बाघ पहाड़ में कहां तक पहुंच गए हैं, उसकी भी गणना होगी। माना जाता है कि नैनीताल, भीमताल से लेकर रानीखेत तक भी बाघों का मूवमेंट है। इस गणना की जिम्मेदारी रामनगर वन प्रभाग के एसडीओ जीएस कार्की, नंधौर अभ्यारण्य के उप निदेशक प्रकाश आर्य आदि अधिकारियों को सौंपी गई है।

अमेस फल से बढ़ेगी राज्य की आय

इको सिस्टम सर्विसेज को कारोबार से जोड़ने की विश्वस्तरीय खोज में उच्च हिमालयी शुष्क शीत क्षेत्रों में पैदा होने वाला फल अमेस उत्तराखंड में आय का जरिया बनने जा रहा है। अमेस (हिपोपी रेनाइडिस) उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और लेह (जम्मू-कश्मीर) में बहुतायत में पाया जाता है। उत्तराखंड सरकार वन पंचायतों के माध्यम से अमेस के विकास से संबंधित कार्ययोजना तैयार कर रही है। इसके लिए डीआरडीओ के डिफेंस इंस्टीट्यूट ऑफ हाई एल्टीट्यूड ऑफ रिसर्च सेंटर ने निजी कंपनियों के साथ एमओयू साइन किया है।

बॉटनिकल सर्वे आफ इंडिया के विज्ञानियों ने अमेस की उपयोगिता की पुष्टि कर दी है। इनका कहना है कि अमेस के फल में विटामिन ए, सी, ई के साथ फोलिक एसिड आदि तत्व होते हैं। सांस रोग समेत कई बीमारियों की दवाएं इससे बनती हैं। साथ ही अमेस की झाड़ियों का घरों की चहारदीवारी के रूप में भी इस्तेमाल होता है। यह इको सिस्टम को संरक्षित करने के घटक के रूप में भी काम करता है। अमेस की झाड़ियां मिट्टी को बांधे रखती हैं। ये बारिश में मिट्टी के कटाव को रोकती हैं। वन विभाग अमेस की झाड़ियों को मध्य हिमालयी क्षेत्र में लगाने की कार्ययोजना तैयार कर रहा है, ताकि इसके फलों के उपयोग के साथ मिट्टी का कटाव रोका जा सके। उत्तराखंड वन पंचायत सलाहकार परिषद के अध्यक्ष कुंवर सिंह नेगी का कहना है कि चीन अमेस से सालाना 12 हजार करोड़ का कारोबार करता है। फिर सदियों से स्थानीय लोग इसके गुण समझते हैं। मंगोल शासक चंगेज खां अपनी फौज की सेहत दुरुस्त रखने के लिए सिपाहियों को अमेस का जूस पिलाता था। बॉटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया के क्षेत्रीय कार्यालय के संयुक्त निदेशक डा. एसके श्रीवास्तव ने बताया कि उच्च हिमालयी क्षेत्र में पाए जाने वाले फल अमेस को लेह बेरी भी कहते हैं। इसके पत्ते भेड़-बकरियों के चारे में भी इस्तेमाल होते हैं। वन पंचायतों के माध्यम से इसे संरक्षित किया जा रहा है। क्षेत्रीय लोग सदियों से इसका इस्तेमाल कर रहे हैं। यह बदरीनाथ और अन्य उच्च हिमालयी क्षेत्रों में होता है। रोजगार के लिए इसकी नर्सरियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ●

ग्लेडियोलस के उत्पादन वृद्धि हेतु सुझाव

■ गंगाशरण सैनी

ग्लेडियोलस शब्द लेटिन भाषा के शब्द 'ग्लेडियस' से बना है, जिसका अर्थ है - तलवार, क्योंकि ग्लेडियोलस की पत्तियों का आकार तलवार के समान होता है। इसके आकर्षक पुष्प जिन्हें लोरेट की संज्ञा भी दी जाती है, जो पुष्प दंडिका (स्पाइक) पर विकसित होते हैं, जो 10-14 दिनों तक तरोताजा रहते हैं। ग्लेडियोलस के फूलों का उपयोग कार्तिक फूलों एवं आंतरिक गृह सज्जा हेतु विशेष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसे गमलों एवं क्यारियों में उगाकर बागवानी, घर, पार्क इत्यादि स्थलों को अलंकृत करने हेतु भी किया जाता है।

ग्लेडियोलस में कुछ विलक्षण विशेषताएं पाई जाती हैं, जैसे सुगम खेती, शीघ्र पुष्प प्राप्ति, पुष्प के विभिन्न रंगों, पुष्पदंडिकाओं की अधिक भण्डार क्षमता व अधिक आर्थिक लाभ के कारण इसकी लोकप्रियता में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। बड़े-बड़े शहरों के समीप खेती का प्रचलन तीव्र गति से बढ़ रहा है, जिसके कारण उत्पादकों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।

मृदा

वैसे तो ग्लेडियोलस को सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, परन्तु उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट मृदा, जिसमें जीवांश पदार्थ की प्रचुरता हो, साथ ही पी.एच. मान 5.5-6.5 के मध्य हो, सर्वोत्तम मानी जाती है। खुला स्थान जहां पर सूर्य की रोशनी सुबह से शाम तक रहती हो, ऐसे स्थान पर ग्लेडियोलस की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

जलवायु

भारत में ग्लेडियोलस को मैदानी क्षेत्रों में 2500 मीटर की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता हैं। यह रबी मौसम में उगायी जाने वाली फसल है जिस स्थान पर हमें ग्लेडियोलस उगानी है वहां पर पर्याप्त मात्रा में धूप आनी चाहिए।

खेत की तैयारी

खेत की प्रथम जुताई बोआई के कुछ दिन पूर्व करनी चाहिए और खेत को खुला छोड़ देना चाहिए, ताकि खरपतवार और रोगाणु आदि मर जायें। उसके उपरान्त 3-4 जुताइयां आर-पार करनी चाहिए, ताकि भूमि के नीचे की कठोर परत टूट जाए। अन्तिम जुताई के उपरान्त पाटा लगाना चाहिए ताकि भूमि भुरभुरी एवं समतल हो जाए। जुताई के उपरान्त छोटी-छोटी क्यारियां बना लेनी चाहिए। क्यारियों को जमीन की सतह से 15-20 सेमी0 ऊंचाई पर बनानी चाहिए, ताकि फालतू पानी वहां पर अधिक समय न तकन ठहर सकें।

खाद एवं उर्वरक

भूमि की प्रथम जुताई से पूर्व 30-40 टन कम्पोस्ट या गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर की दर से डालनी चाहिए। उर्वरकों का उपयोग मृदा जांच के बाद ही करना चाहिए। यदि किसी कारणवश मृदा जांच न हो सके, तो उस स्थिति में 200 किलोग्राम नाइट्रोजन, 150 किलोग्राम फॉस्फोरस व 150 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बोआई के समय देनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर बोआई के 25 दिन व 40 दिन बाद उपरिवेशन के रूप में देनी चाहिए।

उपयुक्त किस्में

ग्लेडियोलस में विभिन्न रंगों की अनेक उत्तम किस्में प्रचलित हैं जो कि निम्नवत हैं:-

1. लाल: अमेरिकन ब्यूटी, आस्कर, नजराना, रेड ब्यूटी
2. गुलाबी: पिंक फ्रैंडशिप, पिंकजाइन्ट, समर पर्ल
3. पीला: सपना, टोपाज, टी.एस. 14
4. बैंगनी: हर मजैस्टी
5. सफेद: व्हाइट फ्रैंडशिप, व्हाइटस्नो, व्हाइट मीरा

निर्यात हेतु उपयुक्त किस्में

ओवरसीज, व्हॉइट प्रोसपेरिटी, एलवस, इम्प्रेसिव, अलीविरा, मिकोल, एप्लूज, वाइन एण्ड रोजेव, हटिंगसन, रोबिनेटा, चार्म रोज, फ्रैंडशिप रोज, नीम्फ, नोवालैक्स, पीटर पीर्यस, ट्रेडर हार्न, गोल्ड फिल्ड, बेन्द्रा वाटो, व्हॉइट प्रोसपेरिटी

प्रवर्धन

ग्लेडियोलस उत्पादन धनकंदों द्वारा किया जाता है। इन धनकंदों को वैज्ञानिक रूप में कार्म की संज्ञा दी जाती है। प्रति हैक्टेयर 2 लाख कार्म्स की आवश्यकता होती है।

धनकंदों की बोआई

धनकंदों को बोआई करने का उपयुक्त समय मध्य अक्तूबर से लेकर नवम्बर तक रहता है। धनकंदों का स्वस्थ एवं रोगमुक्त होना नितान्त आवश्यक है।

धनकंदों को बोआई से पूर्व 2 ग्राम बावस्टिन प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 30-40 मिनट तक डुबोकर उपचारित कर लेना चाहिए। फिर इन धनकंदों को छाया में अच्छी तरह सुखाकर बोआई करनी चाहिए।

फूलों की अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन हेतु धनकंदों का व्यास 4-5 सेमी एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी होनी चाहिए। धनकंदों की आपसी दूरी 20 सेमी. रखनी चाहिए। लंबे समय तक फूल उत्पादन करने और अधिक आय प्राप्त करने हेतु धनकंदों की बोआई 10-15 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। इसकी किस्मों को उनके फूल खिलने के समय

के अनुसार अगेती, मध्य व पछेती अलग-अलग क्यारियों मे बोना चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास

प्रथम सिंचाई धनकंदों के अंकुरण के बाद और उसके बाद सर्दियों में 10-12 दिन के अन्तराल पर और ग्रीष्म ऋतु में 5-6 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए। पुष्प डंडियों (स्पाइकों) की निकलने की अवस्था में सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यदि किसी कारणवश क्यारियों में अधिक पानी इकट्ठा हो जाए, तो उसे तुरन्त निकाल देना चाहिए अन्यथा फसल पीली पड़कर मर जाने का भय रहता है।

खरपतवार नियंत्रण

मृदा में वायु संचार एवं खरपतवार नियंत्रण हेतु पौधों की छोटी अवस्था में निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। प्रथम गुड़ाई धनकंदों के अंकुरण के 15 दिन बाद और दूसरी इसके 30 दिन बाद करनी चाहिए।

प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण हेतु 2 लिटर बेसालिन को 1000-1200 लिटर पानी में घोल कर बोआई से 3-4 सेमी0 की परत में मिला देते हैं। ऐसा करने से खरपतवारों से छुटकारा मिल जाता है।

रोग नियंत्रण

फ्यूजेरियम विगलन: यह एक फफूंदीजनित रोग है। इस रोग का प्रथम लक्षण यह है कि इसमें पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और धीरे-धीरे पूरा पौधा पीला पड़कर सूख जाता है।

रोकथाम: खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर बाबिस्टिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

धनकंद विगलन: यह एक फफूंदीजनित रोग है, जिसके कारण धनकंदों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं और धीरे-धीरे वे सड़ जाते हैं। हल्के प्रभावित धनकंदों की यदि बोआई कर दी जाए तो अंकुरण के तुरन्त बाद पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पुष्पडंडिका भी छोटी रह जाती है।

रोकथाम: धनकंदों का भण्डारण करने से पूर्व बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से उपचारित करके और भलीभांति छाया में रखकर करना चाहिए।

पुष्पडंडियों (स्पाइकों) की कटाई

धनकंदों की बोआई के पश्चात अगेती किस्मों में लगभग 60-60 दिनों में मध्य किस्मों में 80-85 दिनों में और पछेती किस्मों में लगभग 100-110 दिनों में पुष्प उत्पादन होना शुरू हो जाता है। पुष्पडंडियों को काटने का समय बाजार की दूरी पर निर्भर करता है। स्थानीय बाजारों हेतु पुष्पडंडियों को उस अवस्था में काटना चाहिए जब बिचले 2-3 फूल खिल जायें और दूरस्थ बाजारों में भेजने हेतु पुष्पडंडियों का तभी काटना चाहिए जब निचली 2-3 पुष्प कलिकाओं का रंग दिखने लगे। पुष्पडंडियो की कटाई प्रात: अथवा शाम के समय जब धूप तेज न हो तेज धार के चाकू या सिकेटियर की सहायता से करनी चाहिए। पुष्पडंडियों को काटने के उपरान्त पानी से भरी बाल्टी में डालते रहना चाहिए, ताकि वे अधिक समय तक तरोताजा बनी रहें। सही ढंग से खेती करने पर प्रति हैक्टेयर 2-2. 5 लाख उच्च श्रेणी की पुष्पडंडिया प्राप्त हो जाती हैं।

धनकंदों की खुदाई

पुष्पडंडियों की कटाई के 60-75 दिन के बाद धनकंदों एवं छोटे धनकंदों (कार्मलैट्स) की खुदाई कर लेनी चाहिए। खुदाई करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि धनकंद पूर्णरूप से परिपक्व हो गये हैं और इस समय पौधे की पत्तियां सूख गई हों। धनकंदों की खुदाई ऐसे समय करनी चाहिए जब मौसम बिल्कुल साफ हों।

खुदाई के पश्चात धनकंदों को उनके आकार के अनुसार अलग-अलग भागों में विभक्त कर के रखना चाहिए। इसके उपरान्त धनकंदों को 2 ग्राम बाबिस्टिन का एक लीटर में घोल बनाकर 30 मिनट तक उपचारित करके अच्छी तरह से छाया में सुखाकर 4-60 सेल्सियस तापमान पर भंडारित करना चाहिए।

इस प्रकार ग्लेडियोलस की वैज्ञानिक विधि से खेती करके कृषक बन्धु एक हैक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 3-4 लाख रुपये तक का शुद्ध लाभ कमा सकते हैं।

ध्यान देने योग्य बातें

- ग्लेडियोलस के लिए सदैव खुली जगह को ही चुनें।
- उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट मृदा में ही उगाएं।
- बोआई से 10-12 दिन पूर्व शीत भण्डार से निकालें।
- धनकंदों को बोने से पूर्व 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से उपचारित करें।
- यदि ग्लैडियोलस को अधिक क्षेत्र में उगाना हो तो धनकंदों को 10-15 दिन के अन्तराल पर बोएं।
- समयानुसार अगेती, मध्य व पछेती किस्मों को बोएं।
- यदि धनकंदों का आकार बड़ा हो, तो उन की दूरी और गहराई बढ़ा देनी चाहिए।
- यदि सम्भव हो सके तो उर्वरकों को मृदा जांच के आधार पर ही डालें।
- खेत में फालतू पानी को कभी भी न रुकने दे, अन्यथा फसल पीली पड़कर मर जायेगी।
- यदि पुष्पडंडियों को विदेश अथवा दूरस्थ बाजार में भेजना हो तो उसे प्रथम पुष्प निकालते ही पुष्पडंडी को काट लेना चाहिए और वैज्ञानिक विधि से पैकिंग करें।
- पुष्पडंडियों की कटाई प्रात: अथवा शाम को ही करें।
- जब पौधों की पत्तियां सूख जाएं, तब धनकंदों की खुदाई करें।
- धनकंदों का भण्डारण करने से पूर्व उन्हें 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से उपचारित करें।

-कृषि बागवानी सलाहकार,
5ई-9बी, बंगला प्लॉट,
फरीदाबाद-121001 (हरियाणा)

सस्ता विकल्प है हरी खाद

■ कृषि चौपाल

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए हरी खाद एक सस्ता विकल्प है। सही समय पर फलीदार पौधे की खड़ी फसल को मिट्टी में ट्रेक्टर से हल चलाकर दबा देने से जो खाद बनती है उसको हरी खाद कहते हैं।

आदर्श हरी खाद में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

- उगाने का न्यूनतम खर्च
- न्यूनतम सिंचाई आवश्यकता
- कम से कम पादम संरक्षण
- कम समय में अधिक मात्रा में हरी खाद प्रदान कर सकें
- विपरीत परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता हो
- जो खरपतवारों को दबाते हुए जल्दी बढ़त प्राप्त करे
- जो उपलब्ध वातावरण का प्रयोग करते हुए अधिकतम उपज दे।

हरी खाद बनाने के लिये अनुकूल फसलें

- ढेंचा, लोबिया, उरद, मूंग, ग्वार बरसीम, कुछ मुख्य फसले हैं जिसका प्रयोग हरी खाद बनाने में होता है। ढेंचा इनमें से अधिक प्रचलित है।
- ढेंचा की मुख्य किस्में सस्बेनीया ऐजिप्टिका, एस रोस्ट्रेटा तथा एस एक्वेलेटा अपने त्वरित खनिजकरण पैर्टन, उच्च नाइट्रोजन मात्रा तथा अल्प ब्रूछ अनुपात के कारण बाद में बोई गई मुख्य ऩसल की उत्पादकता पर उल्लेखनीय प्रभाव डालने में सक्षम है।

हरी खाद के पौधो को मिट्टी में मिलाने की अवस्था

- हरी खाद के लिये बोई गई फसल 55 से 60 दिन बाद जोत कर मिट्टी में मिलाने के लिये तैयार हो जाती है।
- इस अवस्था पर पौधे की लम्बाई व हरी शुष्क सामग्री अधिकतम होती है 55 से 60 दिन की फसल अवस्था पर तना नरम व नाजुक होता है जो आसानी से मिट्टी में कटकर मिल जाता है।
- इस अवस्था में कार्बन–नाईट्रोजन अनुपात कम होता है, पौधे रसीले व जैविक पदार्थ से भरे होते है इस अवस्था पर नाइट्रोजन की मात्रा की उपलब्धता बहुत अधिक होती है
- जैसे जैसे हरी खाद के लिये लगाई गई फसल की अवस्था बढ़ती है कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात बढ़ जाता है, जीवाणु हरी खाद के पौधों को गलाने–सड़ाने के लिये मिट्टी की नाइट्रोजन इस्तेमाल करते हैं। जिससे मिट्टी में अस्थाई रूप से नाइट्रोजन की कमी हो जाती है।

हरी खाद बनाने की विधि

- अप्रैल–मई माह में गेहूं की कटाई के बाद जमीन की सिंचाई कर लें। खेत में खड़े पानी में 50 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से ढेंचा का बीज छितरा लें
- जरूरत पढ़ने पर 10 से 15 दिन में ढेंचा फसल की हल्की सिंचाई कर लें।
- 20 दिन की अवस्था पर 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से यूरिया को खेत में छितराने से नोड्यूल बनने में सहायता मिलती है।
- 55 से 60 दिन की अवस्था में हल चलाकर हरी खाद को पुन: खेत में मिला दिया जाता है। इस तरह लगभग 10-15 टन प्रति हैक्टेयर की दर से हरी खाद उपलब्ध हो जाती है। जिससे लगभग 60-80 किलो नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर प्राप्त होता है। मिट्टी में ढेंचे के पौधों के गलने–सड़ने से बैक्टीरिया द्वारा नियत सभी नाइट्रोजन जैविक रूप में लंबे समय के लिए कार्बन के साथ मिट्टी को वापस मिल जाते हैं।

हरी खाद के लाभ

- हरी खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार होता है।
- हरी खाद से मृदा उर्वरता की भरपाई होती है।
- पोषण के लिए आवश्यक तत्वों को बढ़ाता है।
- सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है।
- मिट्टी की संरचना में सुधार होने के कारण फसल की जड़ों का फैलाव अच्छा होता है।
- हरी खाद के लिए उपयोग किये गये फलीदार पौधे वातावरण से नाइट्रोजन व्यवस्थित करके नोड्यूल्स में जमा करते हैं जिससे भूमि की नाइट्रोजन शक्ति बढ़ती है।
- हरी खाद के लिये उपयोग किये गये पौधे को जब जमीन में हल चलाकर दबाया जाता है तो उनके गलने–सड़ने से नोड्यूल्स में जमा की गई नाइट्रोजन जैविक रूप में मिट्टी में वापस आ कर उसकी उर्वरक शक्ति को बढ़ाती है।
- पौधों के मिट्टी में गलने–सड़ने से मिट्टी की नमी के जलधारण की क्षमता में बढ़ोतरी होती है। हरी खाद के गलने–सड़ने से कार्बन डाइऑक्साइड गैस निकलती है जो कि मिट्टी से आवश्यक तत्व को मुक्त कराकर मुख्य फसल के पौधों को आसानी से उपलब्ध करवाती है।
- हरी खाद दबाने के बाद बोई गई धान की फसल में ऐकिनोक्लोआ जातियों के खरपतवार न के बराबर होते है जो हरी खाद के ऐलेलोकेमिकल प्रभाव को दर्शाते हैं। ●

जल जीवन का अनमोल रतन
इसे बचाने का करो जतन

ठाकुर का कुआँ

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक-धक करने लगी। कहीं देख ले तो गजब हो जाए।

■ मुंशी प्रेमचंद

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आई। गंगी से बोला-यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाए देती है! गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। कुआं दूर था, बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी, आज पानी में बदबू कैसी! लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहां से? ठाकुर के कुंए पर कौन चढ़ने देगा? दूर से लोग डाँट बताएंगे। साहू का कुआं गाँव के उस सिरे पर है, परन्तु वहां कौन पानी भरने देगा? कोई कुआं गाँव में नहीं है। जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला-अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बंद करके पी लूं। गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी से बीमारी बढ़ जाएगी इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली-यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाए देती हूँ।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा-पानी कहां से लाएगी? ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं। क्यों एक लोटा पानी न भरने देंगे? 'हाथ-पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे दर्द कौन समझता हैं! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकनें नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगें?' इन शब्दों में कड़वा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती, किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

रात के नौ बजे थे। थके माँदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पाँच बेफिक्रे जमा थे मैदान में। बहादुरी का तो न जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं। कितनी होशियारी से ठाकुर थानेदार से एक खास मुकदमे की नकल ले आए। नाजिर और मोहतिमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास माँगता, कोई सौ। यहां बे-पैसे- कौड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए। इसी समय गंगी कुएं से पानी लेने पहुँची। कुप्पी की धुँधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इंतजार करने लगी। इस कुँए का पानी सारा गांव पीता है। किसी के लिए रोका नहीं, सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते। गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा-हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक- से-एक छँटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिए की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते है। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस-किस बात में हमसे ऊँचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे है, हम ऊँचे। कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रस-भरी आँख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊँचे हैं!

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक-धक करने लगी। कहीं देख ले तो गजब हो जाए। एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अँधरे साए मे जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर! बेचारे महगू को इतना मारा कि महीनों लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगार न दी थी। इस पर ये लोग ऊँचे बनते हैं? कुएं पर स्त्रियाँ पानी भरने आयी थीं। इनमें बातें हो रही थीं। 'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।' 'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती हैं।' 'हाँ, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियाँ ही तो हैं।' 'लौडिंयाँ नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं? दस-पाँच रुपये भी छीन- झपटकर ले ही लेती हो। और लौंडियां कैसी होती हैं!' 'मत लजाओ, दीदी! छिन-भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता! यहां काम करते-करते मर जाओ, पर किसी का मुँह ही सीधा नहीं होता।' दोनों पानी भरकर चली गई, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गऐ थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद कर अंदर आंगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न गया हो। गंगी दबे पाँव कुएं की जगत पर चढ़ी, विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ। उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दाएं-बाएं चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सूराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गई, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती-भर उम्मीद नहीं। अंत में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया। घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा-सी आवाज न हुई। गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुँह तक आ पहुँचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से न खींच सकता था। गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा। गंगी के हाथ रस्सी छूट गई। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हिलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर कौन है, कौन है? पुकारते हुए कुएं की तरफ जा रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी। घर पहुँचकर देखा कि लोटा मुंह से लगाए जोखू वही मैला गंदा पानी पी रहा है। ●

बड़ी होती बेटी

■ मदन कश्यप

1)

अभी पिछले फागुन में
उसकी आँखों में कोई रंग न था
पिछले सावन में
उसके गीतों में करुणा न थी
अचानक बड़ी हो गई है बेटी
सेमल के पेड़ की तरह
हहा कर बड़ी हो गई है
देखते ही देखते।

जब वह जन्मी थी
तब कितना पानी होता था
कुएँ-तालाब में
नदी तो हरदम लबालब भरी रहती थी
भादों में कैसी झड़ी लगती थी
वैसी ही एक रात में पैदा हुई थी
ऐसी झपासी थी कि एक पल के लिए भी
लड़ी नहीं टूट रही थी

अब बड़ी हुई बेटी
तब तक सूख चुके हैं सारे तालाब
गहरे तल में चला गया है कुएँ का पानी
नदी हो गई है बेगानी
काँस और सरकंडों के जंगल में
कहीं-कहीं बहती दिखती हैं पतली पतली धाराएँ।

पलकें झुका कर
सपनों को छोटा करो मेरी बेटी
नींद को छोटा करो
देर से सूतो
पर देर तक न सूतो
होठों से बाहर न आये हँसी
आँखों तक पहुंच न पाये कोई खुशी
कलेजे में दबा रहे दु:ख
भूख और विचारों को मारना सीखो
अपने को अपने ही भीतर गाड़ना सीखो

कोमल-कोमल शब्दों में
जारी होती रहीं क्रूर हिदायतें
फिर भी बड़ी हो गई बेटी
बड़े हो गये उसके सपने!

2)

बड़ी हो रही है बेटी
बड़ा हो रहा है उसका एकांत

वह चाहती है अब भी
चिड़ियों से बतियाना
फूलों से उलझना
पेड़ों से पीठ टिका कर सुस्ताना
पर सब कुछ बदल चुका है मानो

कम होने लगी है
चिड़ियों के कलरव की मिठास
चुभने लगे हैं
फूलों के तेज रंग
डराने लगी हैं
दरख्तों की काली छायाएँ

बड़ी हो रही है बेटी
बड़े हो रहे हैं भेड़िए
बड़े हो रहे है सियार

माँ की करुणा के भीतर
फूट रही है बेचौनी
पिता की चट्टानी छाती में
दिखने लगे हैं दरकने के निशान
बड़ी हो रही है बेटी!

3)

बाबा बाबा
मुझे मकई के झौंरे की तरह
मरुए में लटका दो

बाबा बाबा
मुझे लाल चावल की तरह
कोठी में लुका दो

बाबा बाबा
मुझे माई के ढोलने की तरह
कठही संदूक में छुपा दो

मकई के दानों को बचाता है छिलकोइया
चावल को कन और भूसी
ढोलने को बचाता है रेशम का तागा
तुझे कौन बचाएगा मेरी बेटी!

ACTUAL SITE PEERUMDARA

देहरादून, रानीपोखरी और रामनगर में नकद
एवं आसान किस्तों में सस्ते रिहायशी प्लाट एवं स्टुडियो अपार्टमैन्ट

देहरादून रानीपोखरी रू. 5500/- प्रति गज

पीरूमदारा रामनगर रू. 3150/- प्रति गज

FREE SITE VISIT FACILITY

Book your fully furnished Studio Apartment
Near Jim Corbett National Park & Ram Nagar
@ Rs.12.90 Lakh only

DEV BHOOMI ELOPERS
BUILDING TOMORROW

Devbhoomi Group
Devbhoomi Construction Company

Head Office : 134-C, Ground Floor, Mohammadpur, Near Bhikaji Cama Place, New Delhi - 110066, Ph. : 011-26715123
Branch Office : NH-72, Rishikesh - Dehradun Road, Opp. Jolly Grant Airport, Dehradun, Uttarakhand, Mobile : 07060958141
Branch Off. : New Dangwal Hotel, First Floor, Opp. GMU & KMU Bus Stand, Ram Nagar Mobile : 7536888163
E-mail : uk@devbhoomidevelopers.com, Website : www.devbhoomidevelopers.com

Mobile : 8285222202, 9654892449, 9891955999

RNI REGD. NO.: DELHIN/2007/20953

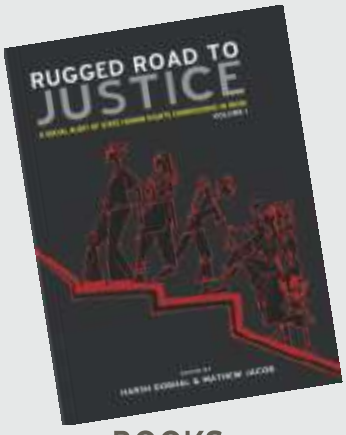

BOOKS

BOOKLETS

MAGAZINES

NEWSLETTERS

BROCHURES

CALENDARS

REPORTS

POSTERS

FLYERS

Designing & Printing under One Roof

KALPANA PRINTOGRAPHICS
Call us: +91-971640-7931
E-mail: kpgdelhi@yahoo.com
Kalpana Printographics